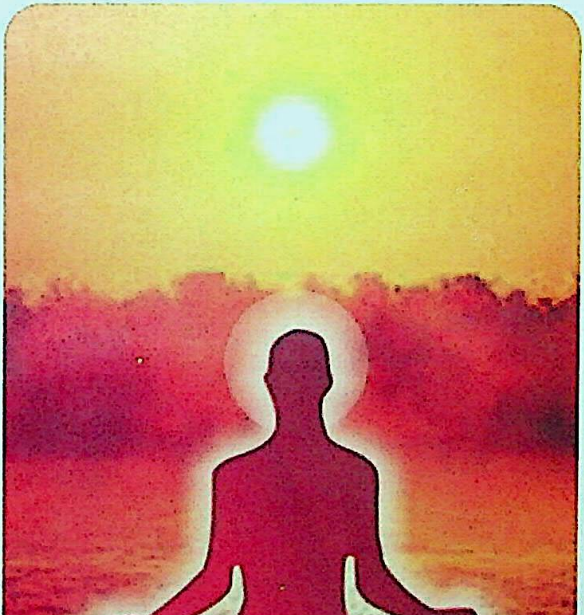
चन्दरदास की सूक्तियाँ

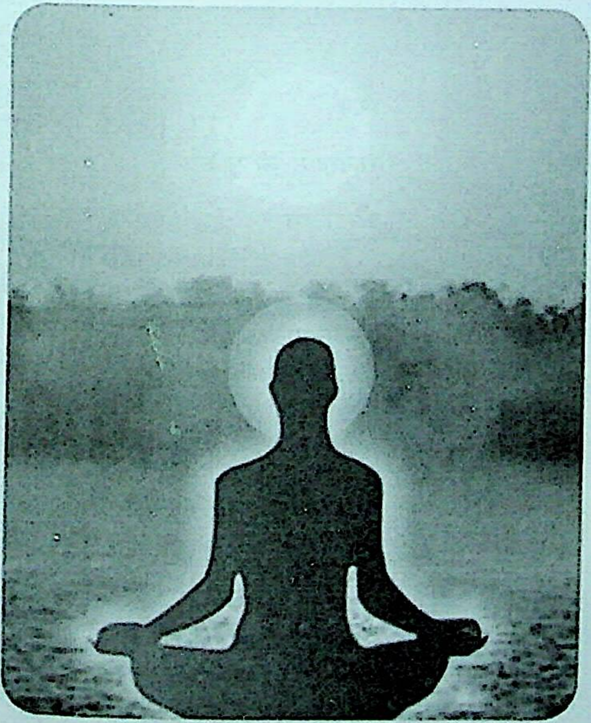
(धर्मम् शरणम् गच्छामि)



कवि - चन्दरदास

चन्दरदास की सूक्तियाँ

(धर्मम् शरणम् गच्छामि)



कवि - चन्दरदास

प्रकाशक - चन्द्र प्रकाशन
अजाँव, बर्थराखुर्द, चौबेपुर, वाराणसी।
मो0- 8726599089, 8853615160

पुस्तक का नाम - चन्दरदास की सूक्तियाँ

वर्ष - 2014

संस्करण - प्रथम

मुखपृष्ठ - चन्दरदास की सूक्तियाँ

वितरक - चन्दरदास

मूल्य - रू0 75.00

चित्र - अनुपम पाण्डेय

कम्पोजिंग - बच्चा बाबू विश्वकर्मा

मुद्रक - लायन्स प्रिन्टर्स एण्ड पब्लिशर्स
'पवित्रावास' के.66/1-डी-1, नरहरपुरा, वाराणसी
दूरभाष : 0542-2210222, 9889555454

वर्तमान स्थायी पता - चन्दरदास न्यू कालोनी, तिलमापुर, आशापुर,
वाराणसी (उ0प्र0)
मो0-8726599089, 8853615160

आत्म निवेदन

किसी भी देश की वास्तविक प्रगति वहाँ के लोगों द्वारा आध्यात्मिक और भौतिक ज्ञान के सम्यक उपयोग पर निर्भर होती है। इसलिए हमारे मनीषियों ने ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान पर भी बहुत बल दिया है। एक ओर जहाँ वे ज्ञान के द्वारा सूक्ष्म से सूक्ष्मतर परमात्म तत्व का दर्शन किये, वहीं विज्ञान के द्वारा ब्रह्मास्त्र तक का आविष्कार किये। परन्तु आज मानव इस सत्य को भूल गया है। उसे अपने इस उदात्त सत्य का ज्ञान ही नहीं है। आज का मानव संसार के इस चकाचौंध में भटक सा गया है। आज वह आधुनिकता के नाम पर भौतिकता का लोभी हो गया है। परिणाम स्वरूप लोगों में संघर्ष बढ़ रहा है, द्वेष बढ़ रहा है तथा मानव में नैतिकता का हराश हो रहा है। आज लोगों का झुकाव अध्यात्म को छोड़कर भौतिकता की ओर बढ़ता जा रहा है। यह सत्य है कि आध्यात्मिकता के साथ-साथ भौतिकता का विकास होना मानव मात्र की प्रगति के लिए अति आवश्यक है। लेकिन केवल भौतिकता के विकास पर ही अपना सारा जीवन लगा देना, नैतिकता का पतन करना है। जब तक भौतिकता के साथ आध्यात्मिकता का विकास नहीं होगा तब तक मानव के अन्दर मानवता का विकास नहीं होगा। मानवता के विकास के लिए आध्यात्मिकता और भौतिकता दोनों का सम्यक विकास अति आवश्यक है। साथ ही केवल आध्यात्मिकता के विकास से देश का विकास या मानव का सम्यक विकास नहीं हो सकेगा। नये-नये कल-कारखाने, नये-नये उद्योग धन्धे, नये-नये वैज्ञानिक आविष्कार, आदि नहीं हो सकेंगे। ऐसी स्थिति में देश में बेरोजगारी बढ़ेगी, लोगों के बीच टकराव बढ़ेगा और लोग उत्श्रृंखल स्वभाव के होंगे। मानव समान में मानवीय व्यवस्था बिगड़ जायेगी। जिसके परिणाम स्वरूप चोरी, डाका, हत्या और बलात्कार आदि अमानवीय कृत्य समाज में व्याप्त हो जायेंगे। पैसे का मूल्य समाज में इतना बढ़ जायेगा कि उसके लिए भाई-भाई का दुस्मन हो जायेगा।

इसी प्रकार यदि समाज में केवल भौतिकता का विकास होगा तो लोगों को रोजगार तो मिलेंगे, लोगों के पास धन भी इकट्ठा होगा, गरीबी मिटेगी या घटेगी लेकिन नैतिकता का पतन होगा। लोगों के पास आवश्यकता से

अधिक सम्पत्ति होने से बुद्धि उत्श्रृंखल होगी। अभिमान और भय दोनों बढ़ जायेंगे। लोगों के भीतर द्वन्द और द्वेष की भावना व्याप्त हो जायेगी। हर व्यक्ति एक-दूसरे से आगे बढ़ने के लिए अनैतिक कोशिश करेगा। परिणाम स्वरूप दोनों में एक-दूसरे के प्रति घृणा बढ़ेगी। प्रेम, करूणा, दया और ममता की हानि होगी। लोगों के मन से परोपकार की कोमल भावना समाप्त होने लगेगी। मानव के अन्त:करण में राग और द्वेष बढ़ने लगेंगे। जिससे मानव समाज में संघर्ष बढ़ेगा। लोग एक-दूसरे के जान के प्यासे हो जायेंगे। लोगों के मन में असंतोष व्याप्त हो जायेगा और तब मानवता की कमर टूट जायेगी।

नीतिशास्त्र के अनुसार संसार में छह प्रकार के सुख होते हैं-

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च ।
वश्यश्च पुत्रो अर्थकरी च विद्या षट् जीव लोकेषु सुखानि राजन् ।।

अर्थात् हे राजन् धनागम, नित्य आरोग्य, सुन्दर पत्नी, जो प्रिय बोलने वाली हो, आज्ञाकारी पुत्र और अर्थ प्राप्ति योग्य विद्या इस संसार में ये छः सुख हैं। परन्तु इन छ: सुखों के होते हुए भी संसार में लोग दुखी हैं और इन सुखों का त्याग करके संयास पथ को धारण कर लेते हैं। क्योंकि उन्हें इन सुखों में वास्तविक सुख का अनुभव नहीं होता। उनके लिए तो वास्तविक सुख आत्मबोध में ही है। वे लोग इन सांसारिक सुखों को दुख का कारण मानते हैं। उपरोक्त छ: सुख तो भौतिक सुख हैं। उसमें आध्यात्मिक सुख निहित नहीं है। अत: यह सुख पूर्ण नहीं है। यह सुख मानव को परमानन्द नहीं दे सकता। सांसारिक सुख तो मिलता और बिछुड़ता रहता है। इसलिए पूर्व युग में इन सभी सुखों के रहते हुए भी बहुत से चक्रवर्ती राजा इन सुखों का त्याग करके जंगलों में आध्यात्मिक सुख की खोज में निकल जाया करते थे। क्योंकि आध्यात्मिक सुख या अक्षय सुख प्राप्ति वस्तुमात्र के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले सुख से अर्थात् वाह्य स्पर्श सुख से रहित हुए बिना नहीं मिल सकता। भगवान श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं-

वाह्य स्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते।। गीता ५/२१

अर्थात् 'वाह्य स्पर्श में आसक्ति रहित अन्त:करण वाला साधक अन्त:करण में जो सात्विक सुख है, उसको प्राप्त होता है। फिर वह ब्रह्म में अभिन्न भाव से स्थिर मनुष्य अक्षय सुख का अनुभव करता है।'

तात्पर्य यह है कि सांसारिक सुख क्षणभंगुर है, पर आध्यात्मिक सुख चिर स्थायी है। अत: दोनों सुख को प्राप्त करने के लिए आपको भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों मार्गों पर सम्यक भाव से चलना होगा। तभी आपका जीवन आनन्दमयी हो सकेगा और तभी आपकी और पूरे मानव समाज की सच्ची प्रगति सम्भव हो सकेगी। इसलिए भौतिकता के साथ-साथ आध्यात्मिकता का विकास हर मानव के लिए आवश्यक है। जिससे मानव को भौतिक सुख के साथ आध्यात्मिक सुख भी प्राप्त हो सके। तभी मानव का समुचित विकास कहा जायेगा और तभी मानव जीवन आनन्दित हो सकेगा, मन में सदा मानवता का भाव रहेगा, परोपकार की भावना रहेगी और हृदय में हर प्राणी के प्रति करुणा, प्रेम और दया का भाव प्रगट होगा। परिणाम स्वरूप मानव-मानव में भाई चारा बढ़ेगा, लोग एक-दूसरे के सुख-दुख में संगी होंगे। लोगों के मन में ईर्ष्या या जलन की भावना नहीं होगी। लोग मिल जुल कर रहेंगे। नर और नारी हर कोई एक-दूसरे का सम्मान करेंगें। छोटे-बड़े, ऊँच-नीच, धनी-निर्धन का भेद समाप्त हो जायेगा। तब सभी लोग केवल मानव रहेंगे, जिसमें मानवता रहेगी। जिसके सहारे हर व्यक्ति हर प्राणी में ईश्वर का दर्शन कर सकेगा। तब मानव समाज से द्वन्द और द्वेष सदा के लिए समाप्त हो जायेगा और तब एक आदर्श समाज की स्थापना होगी। जिसे हम रामराज्य कह सकते हैं।

पश्चिमी विचारक श्री प्लेटो का कहना है कि मनुष्य का बर्ताव तीन बातों पर निर्भर रहता है- इच्छा, भावना और ज्ञान। आज व्यक्ति में इच्छाशक्ति तो है परन्तु भावना की कमी है और जहाँ तक ज्ञान का प्रश्न है, उसका तो आज मानव जीवन में पूर्णरूप से अभाव है। आज व्यक्ति को नहीं मालूम है कि क्या सत है और क्या असत है, क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य है, क्या बुरा है और क्या अच्छा है, क्या बन्धन है और क्या मोक्ष है, क्या जीवन है और क्या जगत है, और क्या जीवात्मा है और क्या

परमात्मा है। इन तमाम तथ्यों पर उसका ज्ञान अधकचरा है। शायद इसीलिए हर एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से अपने को दूर पाता है। उसमें सहयोग की, दया, प्रेम और करुणा की तथा परोपकार आदि की सद्भावना नहीं जागती। जिससे उसका जीवन शुष्क हो जाता है, कठोर हो जाता है और वह हर प्राणी के साथ क्रूरता का व्यवहार करने लगता है। आज जो चारों तरफ समाज में चोरी, डाका, हत्या और बलात्कार आदि दुष्कर्म हो रहे हैं, उसका मुख्य कारण ज्ञान अर्थात् आध्यात्मिकता का अभाव है। ज्ञान के अभाव में हिंसा बढ़ रही है। हर वर्ष हिंसा की घटनाओं का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। समाज में मानव का नैतिक पतन हो रहा है। इस नैतिक पतन को न होने देना, इसे ठीक करना एक कवि का परम कर्तव्य है। इसलिए मैंने इस पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक के हर सूक्ति में कुछ न कुछ नैतिक सीख छिपी हुई है। ताकि इसे पढ़ कर लोग सत्य को पहचान सकें। व्यक्ति के जीवन में हिंसा का कोई स्थान नहीं है। अहिंसा और सत्य ही मनुष्य के जीवन का मूल मंत्र है। सारी मानवता इसी दो बिन्दु पर निर्भर है। जिस दिन व्यक्ति को सत्य और अहिंसा का मूल्य समझ में आ जायेगा, उस दिन मानव के मन में बदलाव अपने आप आने लगेगा। तब लोग दूसरे के सुख-दुख में सहृदयतापूर्वक भाग लेने लगेंगे, तब हिंसा का, द्वेष का, द्वन्द का भाव समाप्त हो जायेगा। यही भावना लेकर मैंनें पुस्तक की रचना की है। इस पुस्तक की प्रत्येक सूक्ति अपने में पूर्ण है और एक नैतिक शिक्षा देने में समर्थ है।

तात्पर्य यह है कि जब तक सत्य का ज्ञान नहीं होगा, जब तक अन्त:करण में उत्कृष्ट भावनाओं की उत्पत्ति नहीं होगी। जब तक मन में सुदृढ़ विचार नहीं होगा, तब तक सद्व्यवहार सम्भव नहीं है। यदि अपने बर्ताव को, अपने आचरण को शुद्ध करना है तो अपने ज्ञान की सीमा को बढ़ाना होगा। तुम्हें सत् और असत् को पहचानना होगा। तभी आपके मन में श्रेष्ठ विचार उदित होंगे और तभी आपका आचरण जगत आचरण बन सकेगा।

अत: आपके आचरण को उदात्त बनाने के लिए एक सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता है। जिसे कुर्सी पर बैठा कोई राजनेता नहीं ला सकता

क्योंकि राजनेता तो राजनैतिक क्रांति ला सकता है। सांस्कृतिक क्रांति तो कवि, साहित्यकार, कलाकार और समाजसुधारक ही ला सकते हैं। इस दृष्टि से एक कवि का उत्तरदायित्व और भी बढ़ जाता है। इसी उत्तरदायित्व को निभाते हुए मैंने इस पुस्तक की रचना की है, ताकि पाठक इसे पढ़कर सत्य को पहचान सकें और समाज में एक आदर्श आचरण प्रस्तुत कर सकें।

आज प्रदूषण के सम्बन्ध में दुनिया की तमाम सरकारें चिंतित हैं। बड़े-बड़े वैज्ञानिक इसके दुष्परिणाम पर नाना प्रकार से आगाह कर चुके हैं। उनका कहना है कि आज सारा विश्व ध्वनि प्रदूषण, खाद्य प्रदूषण, जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण आदि अनेक प्रकार के प्रदूषणों से दूषित हो रहा है। जो कि प्राणी मात्र के लिए बहुत घातक है। इस सम्बन्ध में मेरे विचार से कुछ और प्रदूषण है जो सम्पूर्ण मानव और मानवता के लिए विनाश का कारण सिद्ध हो रहे हैं, वे हैं- विचारों का प्रदूषण और वाणी का प्रदूषण।

दुनिया की सारी सरकारें अन्य सभी प्रदूषणों के निवारणार्थ कार्य कर रही हैं, परन्तु विचार और वाणी सम्बन्धी प्रदूषणों पर उनका ध्यान नहीं गया है। जिस प्रदूषण के कारण समाज में सबसे अधिक विघटन है, अत्याचार है, पापाचार है, व्याभिचार है, बलात्कार है। जिसके कारण आज भाई-भाई से लड़ रहा है, नारियों की इज्जत तार-तार हो रही है, समाज में अत्यधिक दंगे और फसाद हो रहे हैं। जिसके कारण जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद और यहाँ तक कि धर्मवाद भी मानवता को निगल जाने के लिए मुँह बाये खड़ा है। उन प्रदूषणों पर सरकार द्वारा कोई सकारात्मक कार्य नहीं हो रहा है।

अतः इस विचार और वाणी सम्बन्धी प्रदूषणों पर गहराई से विचार करने की आवश्यकता है। जब तक विचारों और वाणी में शुद्धता, निर्मलता, पवित्रता, सहजता, सरलता और समता नहीं आयेगी तब तक मानवता का पतन होता रहेगा। जब तक मानव को यह बोध नहीं होगा कि हम सब एक परमात्मा की संतान हैं, हमारा मूलधन प्रेम, करुणा, दया, परोपकार और उदारता है, और इसी रास्ते पर चलकर दुनियाँ को अपना बना सकते हैं और इसी राह पर चलकर हम मानवता की सही अर्थों में उन्नति कर सकते

हैं, तब तक हमारे जीवन में प्रकाश नहीं होगा। हमारे चारों तरफ अंधेरा ही अंधेरा छाया रहेगा। इसके लिए हमें अपने स्वरूप को गहराई से जानना होगा। हमें आत्मज्ञान प्राप्त करना होगा। हमें एक नई राह का निर्माण करना होगा। इसके लिए हमें एक सच्चे गुरु की आवश्यकता होगी। जिसके मार्गदर्शन में हम अपने आप को जगा सकें। हम जब तक अपने अन्दर से नहीं जागेंगे, तब तक हमारे विचार और हमारी वाणी प्रदूषित ही रहेंगे। ऐसी स्थिति में हम एक आदर्श मानव समाज की स्थापना नहीं कर सकते। इस दृष्टि से यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।

प्रिय पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वे एकाग्रचित्त होकर इस पुस्तक को पढ़ें। इस पुस्तक की भाषा बहुत ही सरल, सीधी और सधुक्कड़ी है। जो सभी पाठकों को पढ़ने के योग्य है। इस पुस्तक की एक-एक सूक्ति आपके चित्त को निर्मल करने में और सत्य का ज्ञान कराने में सफल होगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। साथ ही जिनके दर्शन एवं शुभाशीष से मैं परम शान्ति एवं संतोष का अनुभव करता हूँ ऐसे श्री विभूषित ब्रह्मलीन स्वामी श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज (श्रीमठ काशी), आचार्य पीठाधीश्वर संत विवेकदास आचार्य जी महाराज (कबीरमठ काशी), अनन्त श्री विभूषित स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती महाराज (सुमेरपीठ काशी), स्वामी शंकरदेव चैतन्य ब्रह्मचारी महाराज (धर्मसंघ शिक्षामंडल के अध्यक्ष), दंडी स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी महाराज (धर्म सम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज के शिष्य, धर्मसंघ काशी) के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। ऐसे महान सिद्ध महात्माओं के आशीर्वाद से ही मैं अपनी इस रचना को पूर्ण कर सका हूँ। मैं राष्ट्रपति महोदय द्वारा पुरस्कृत आदरणीय श्री शशिभूषण तिवारी जी प्रधानाचार्य, श्री सुभाष इण्टर कालेज, चौबेपुर, वाराणसी का भी हृदय से आभारी हूँ, जिन्होंने इस रचना हेतु अपना स्नेह और संदेश दिया है। इनके अतिरिक्त इस पुस्तक के प्रकाशन में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से जो भी सहयोगी रहे हैं, उन सभी को मेरा बहुत बहुत धन्यवाद!

चन्दरदास

"नमोऽस्तु रामाय"



महामनीषी चन्दरदास की सूक्तियों को मैंने पढ़ा। अतिशय आनन्द की सम्प्राप्ति हुयी। तत्त्वज्ञान की प्राप्ति अत्यन्त कठिन है। असंख्यों में किसी एक को होती है। सम्प्राप्त ज्ञान की अपरोक्षावस्था और भी कठिन है। अपरोक्षावस्था के बाद ही ज्ञान चरित्र में अवतरित होता है। तदनन्तर दूसरों में ज्ञान को पहुँचाने के लिए अभिव्यक्ति स्वरूप प्रयास होता है। इस क्रमिकता का दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है।

चन्दरदास की अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति के क्रमों से मण्डित जान पड़ती है। अतएव यह पाठकों को प्रेरित कर धन्य जीवन का निर्माण करेगी, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

स्वामी श्री रामनरेशाचार्य जी महाराज

श्रीमठ - पंचगंगा घाट

वाराणसी (काशी)

शुभाशीष



संत कवि श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय शास्त्री उर्फ चन्दरदास जी द्वारा रचित पुस्तक 'चन्दरदास की सूक्तियाँ' का अवलोकन मेरे द्वारा किया गया। इसमें मानव के भौतिक उन्नति के साथ-साथ आध्यात्मिक और नैतिक उन्नति पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही आज मानव के अन्दर फैल रही विचार सम्बन्धी प्रदूषण से मुक्ति के लिए भी इस पुस्तक में मुख्य रूप से वर्णन किया गया है। निश्चय ही यह पुस्तक मानवता के उज्ज्वल दामन पर लगे हुए दाग को मिटाने में अत्यन्त सफल है। इस पुस्तक से मानव के चारित्रिक विकास को निश्चय बल मिलेगा। मेरा प्रिय पाठकों से निवेदन है कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और अपने भविष्य को उज्ज्वल बनायें। इस पुस्तक की रचना करने के लिए मैं कवि चन्दरदास जी को शुभाशीष देता हूँ और कबीर साहब से प्रार्थना करता हूँ कि वे कवि के ऊपर ऐसे ही अपनी असीम कृपा निरन्तर बरसाते रहें। मैं कवि चन्दरदास के इस भगवदीय कार्य के लिए एवं आगे भी इसी प्रकार अपनी लेखनी से निरन्तर मानवता की सेवा करते रहें, इसके लिए बहुत आशीर्वाद देता हूँ।

शुभकामनाओं सहित

आचार्य महंत विवेकदास

सिद्धपीठ कबीरचौरा मठ, मूलगादी ट्रस्ट

कबीरचौरा, वाराणसी (काशी)



शुभ आशीष

कवि चन्दरदास द्वारा लिखित ग्रन्थ 'चन्दरदास की सूक्तियाँ' का आद्योपान्त सिंहावलोकन किया गया। जिसमें सम्पूर्ण मानवीय विषयों को पद्यात्मक शैली में व्यक्त किया गया है। जो लोक जन कल्याण एवं मानवता के लिए उपयोगी सिद्ध हो, समाज में व्याप्त भ्रान्ति दूर हो एवं मानव में व्याप्त अविद्या, अन्धकार का उन्मूलन हो। ग्रन्थ के माध्यम से राष्ट्रीय एकता, अखण्डता, शान्ति, सद्भाव का मार्ग प्रशस्त हो। भगवान श्री काशी विश्वनाथ, माता अन्नपूर्णा व काशी के कोतवाल बाबा भैरव लेखक को दीर्घायु प्रदान करते हुए इनके उज्ज्वल भविष्य की शुभकामना करते हैं।

अन्ते शिवस्मृतिः।

शुभचिन्तक

अनन्त विभूषित स्वामी नरेन्द्रानन्द सरस्वती जी महाराज

सुमेरुपीठ - काशी

शुभाशीष



कवि चन्दरदास द्वारा रचित पुस्तक "चन्दरदास की सूक्तियाँ" का अवलोकन मैंने किया। इसमें ईश्वर, सद्गुरु, संसार, आत्मज्ञान, मन, जीवन दर्शन, समतायोग, मानवता, नारी, कामना, स्वपथ और जागो जैसे गम्भीर तथा मार्मिक विषयों को बड़े ही सरल, सहज और हृदयस्पर्शी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। यह पुस्तक निश्चय ही पाठकों के हृदय को प्रभावित करने वाली और आध्यात्म के पथ पर ले जाने वाली सिद्ध होगी। मैं इस उदात्त प्रयत्न के लिए कवि चन्दरदास को हृदय से आशीर्वाद देता हूँ और भगवान भोलेनाथ से प्रार्थना करता हूँ कि वे इसी प्रकार कवि के ऊपर अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखें, ताकि कवि चन्दरदास जी मानव समाज के उज्ज्वल भविष्य के लिए आगे भी इसी प्रकार रचना करते रहें। इसी शुभकामना सहित।

पीठाधीश्वर शंकरदेव चैतन्य ब्रह्मचारी

(श्री धर्मसंघ शिक्षामण्डल - दुर्गाकुण्ड, वाराणसी)

शुभ संदेश



संत कवि श्री चन्दरदास जी द्वारा रचित पुस्तक 'चन्दरदास की सूक्तियाँ' का अवलोकन किया। यह रचना निश्चय ही हृदय को छू लेने वाली है। इसमें आध्यात्मिक अनुभूति का सच्चा अनुभव होता है। इस पुस्तक का अध्ययन कर पाठक को परमात्मा के सत्य स्वरूप का अवश्य ज्ञान होगा, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। मैं श्री चन्दरदास जी के इस प्रयत्न की भूरि-भूरि प्रशंसा करता हूँ और मैं इनके लिए भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि वे निरन्तर इसी प्रकार मानव समाज को सत्य का दर्पण दिखलाते रहें। इस पुस्तक की शैली सरल, सरस और आत्मीय है। इसकी भाषा जन साधारण की भाषा है।

मैं पाठकों से निवेदन करता हूँ कि वे इस पुस्तक को अवश्य पढ़ें और अपने मन तथा अन्तःकरण को निर्मल एवं प्रकाशित करें। इस सफल प्रयत्न के लिए मैं श्री चन्दरदास जी को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इन्हीं शुभकामनाओं सहित।

शशिभूषण तिवारी
प्रधानाचार्य
राष्ट्रपति द्वारा पुरस्कृत वर्ष 2009
श्री सुभाष इण्टर कालेज
चौबेपुर-वाराणसी

शुभाशीष

मानवीय व्यक्तित्व के विकास पर चिन्तन करते हुए कवि श्री चन्दरदास द्वारा रचित पुस्तक 'चन्दरदास की सूक्तियाँ' सराहनीय है। आज जब नैतिकता पर भौतिकता भारी पड़ रही है, मानव का चरित्र मानवता की महान ऊँचाई से पतन की ओर गिरता जा रहा है, समाज में अनैतिकता बढ़ रही है, नारियाँ सुरक्षित नहीं है, सम्प्रदायवाद बढ़ रहा है, भ्रष्टाचार अपनी चरम सीमा पर है, गरीबी और अमीरी की खाई बढ़ती जा रही है, जातिवाद अपनी चरम सीमा पर है, समाजवाद पर व्यक्तिवाद हावी हो रहा है तथा समत्व की भावना से दूर होता हुआ मानव काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर में फँसता जा रहा है- ऐसे वातावरण में इस पुस्तक की महत्ता और भी बढ़ जाती है। मैं परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि वे कवि चन्दरदास पर अपना अनुग्रह इसी प्रकार निरन्तर बनाये रखें, ताकि कवि द्वारा समाज को ऐसे ही उचित मार्गदर्शन मिलता रहे। मैं इस सुन्दर प्रयत्न के लिए कवि चन्दरदास जी को हार्दिक शुभकामना देता हूँ और उनके उज्ज्वल भविष्य की आकांक्षा करता हूँ।

दण्डी स्वामी शिवानन्द सरस्वती

(श्री अनन्तविभूषित धर्मसम्राट स्वामी करपात्री जी महाराज के शिष्य)

धर्मसंघ - काशी

समर्पण

वीणा पाणि सुमात शारदे मैं प्रणाम करता हूँ,
तन मन बच सरवस पद तेरे मैं अर्पित करता हूँ।

शंख चक्र अरु गदा पद्म धरि हे प्रभु विष्णु मुरारी,
करहु कृपा मुझ दास भगत पर चन्दर तोर पुजारी।

ज्ञानरूप शाश्वत अनादि अज अव्यय जग भय हारी,
प्रथम जगतगुरु हे शिव दे वर गाऊँ कीर्ति तुम्हारी।

तोर कृपा रिधि सिधि नर पावत मिलत शान्ति गणराजा,
शत-शत नमन तोहिं हे गणपति पूरण कर मम काजा।

अतुलित तेज सुअंशुमान तू तुमसे जग उजियारा,
तेरी उष्मा से ही उष्मित जड़ चेतन संसारा।

सिंहवाहिनी चतुर्भुजी माँ शंख चक्र धनुधारी,
अंक माहिं भर शिशु तोहार माँ मैं हूँ शरण तुम्हारी।

मात शारदा कृपा बिना को लिखा और लिख पाये,
वही श्रृजन करती नव कविता जन-जन तक पहुँचाये।

तेरे श्री चरणों में अर्पित शब्द अर्थ शुभ अक्षर,
देइ बुद्धि बल शुचि विवेक मों कर चन्दर को साक्षर।

मात पिता के श्री चरणों में मैं अर्पित करता हूँ
आशीर्वाद धारि हिय महँ सत शिव सुन्दर रचता हूँ।

चन्दरदास

|| श्री गणेशाय नमः ||

विषय सूची

चन्दरदास की सूक्तियाँ

ईश्वर

ईश्वर अनादि अनन्त अव्यय नित्य शाश्वत सत्य है,
पालक विनाशक जनक वह सम्पूर्ण जग का तथ्य है,
वह सूर्य चन्द्र सुअग्नि हो जग को प्रकाशित नित करे,
हर हृदय में बैठा वही विज्ञान ज्ञान प्रभा भरे।

ईश्वर न सत्य असत्य वह तो ब्रह्म परमानन्द है,
उसके चरण कर कर्ण सिर हर जगह दृग मुखचन्द है,
वह निर्गुणी पर भोगता गुणज्ञान ज्ञानागम्य है,
वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म शाश्वत अज पुराण अगम्य है।

जग से विरक्त सदा रहे पर जगत पालक है वही,
इन्द्रिय रहित पर इन्द्रियों का शक्ति चालक है वही,
वह होइ वैश्वानर पचाता अन्न भीतर बैठि के,
वह नित्य बरसाता अमिय रस सकल औषधि पैठि के।

वह वेदविद वेदान्त जाना नित्य जाता वेद से,
उसके लिए ब्रह्मांड सारा ही लगे इक गेद से,
वह दूर सेभीदूर है अरु पास से है पास भी,
उसकी कृपा बिन एक भी पत्ता न हिल सकता कभी।

चन्दर वही करुणा दया मृदु भावना की मूर्ति है,
वह सहज सरल अमिय सदृश निर्मल सुपावन ज्योति है,
वह सत अहिंसा प्रेममय संपूर्ण जग का वेद है,
सबमें वही उसमें सभी अन्तर न कछुक अभेद है।

एक ईश से सब जग उपजा व्याप्त वही संसारा,
यहाँ न कोई ऊँचा नीचा सरबस राम पसारा।

खोज ईश को तुम्हें मिलेगा जग के हर कण कण में,
सबसे पास तुम्हारा अपना बैठा तेरे मन में।

ज्यों चन्दा प्रतिबिम्ब नीर में देख चाँद तू माने,
त्यों खुद में तू देख ईश को कर यकीन दीवाने।

कैसहु पक्का रंग होय पर उतर एक दिन जाई,
हरि रँग चढ़ जाये फिर कबहूँ फीका नहिं हो पाई।

मथुरा काशी चार धाम अरु गया प्रयाग मड़ैया,
सबही होवत व्यर्थ जहाँ नहिं पहुँचत मोर कन्हैया।

सोते को नित ईश उठाये जगते को पहुँचाये,
गिरते का लाठी बन जाये हर हिय महँ मुसकाये।

बिन मरजी उसके नहिं कोई एक साँस ले पाता,
सुख दुख जीवन मरन उसी कर मनुज व्यर्थ बौराता।

बाहर अनगिन चिन्ह ईश के अरु खुद भीतर बैठा,
ज्ञानी लख निश दिन आनन्दित पर अज्ञानी ऐंठा।

राज कराये उसकी मरजी चाहे भीख मगाये,
ज्ञानी जान ईश प्रभुताई हर क्षण मौज मनाये।

जग प्रति पागल मत बन पगले मिले न कुछ संसारा,
लगन लगा तू परमात्मा में वह ही एक तुम्हारा।

जनम जनम का संग हमारा एक आश है मेरी,
साथ छोड़ नहिं जाना ईश्वर भल हो रात अंधेरी।

जग महँ जहाँ श्रेष्ठता दीखत शीष तुरत झुक जाता,
कारण सकल श्रेष्ठता माहीं तू ही ईश दिखाता।

मूढ़ बुद्धि मँह माया ममता ईश्वर कहाँ रहेगा,
मूर्ख न जानत ईश कृपा बिन सुख कबहूँ न मिलेगा।

पानी है तो बूँद बूँद से बूँद नहीं बिन पानी,
त्यों तू है तो मैं हूँ प्यारे गीत तुम्हीं मैं बानी।

मिला स्वयं को परम ब्रह्म से वह ही तेरा अपना,
सागर से मिल जल कब देखे नदी सरोवर सपना।

जाकर योग भयल ईश्वर से टूट कबहुँ नहिं पाये,
टूट जाय अस योग न कबहूँ परमात्मा को भाये।

स्थिर ही स्थिर रख पाये जगत अस्थिर सारा,
एक ईश स्थिर सो राखे स्थिर आत्म तुम्हारा।

मानव लोह देवता चादी ईश्वर पारस भाई,
पारस से लोहा चाँदी सब सोना ही बन जाई।

मार सके ना कोई जग में तू अविनाशी आत्मा,
आँख खुले तबही जानोगे तोर पिता परमात्मा।

अहंकार में भूल न सत तू अंश ईश का चन्दर,
दर दर ढूँढ रहा जिसको वह बैठा तेरे अन्दर।

देखा मैने मंदिर मसजिद बनते और उजड़ते,
पर देखा नहिं मन मंदिर में जब ईश्वर नहिं रहते।

रगड़ रगड़ से आग प्रज्ज्वलित पत्थर भी घिस जाता,
करता जो जप राम नाम का ईश प्रकट हो आता।

मिलो प्रेम से जो भी आता जाना या अनजाना,
उसी रूप में जानो आया वह प्रेमी भगवाना।

अल्ला ईश गाड नहिं हिन्दू मुसलिम सिक्ख इसाई,
वह तो हर हिय में बैठा नित सत कै दीप जलाई।

किसी भाव से कर पुकार तू वह तो आ जायेगा,
नित सेवा कर वह पाला है भुला नहीं पायेगा।

वह ईश्वर ही नर पशु पक्षी पर्वत पेड़ व खाई,
और जगत के हर कण कण में रहता नित्य समाई।

खोजो तुम अपने अन्दर ही बैठा ईश मिलेगा,
हृदय खोल कर रख देना तू तब ही कमल खिलेगा।

सदा खुला रखना दरवाजा ना जाने कब आये,
कहीं बन्द वह देख किवाड़ा लौट नहीं चलि जाये।

सुख लेने में सुख नहिं मिलता अस प्रभु रीति बनाई,
सुख देने में ही सुख मिलता यही ईश प्रभुताई।

तर्क वितर्क करे वेदान्ती भगत सदा दीवाना,
स्व सेवक मालिक ईश्वर इक नाता और न जाना।

ईश्वर

हिय में ईश्वर ही बैठा है तबहि ज्योति नित जलती,
बिन ईश्वर के ज्योति जलाने वाला अन्य न धरती।

माँग रहे मूरख ईश्वर से ईश्वर की प्रभुताई,
माँग सको तो उसे माँग वह देखत पलक बिछाई।

माँग लिया अर्जुन ने प्रभु को दुर्योधन प्रभुताई,
एक विजय पाया पर दूजा जीवन व्यर्थ गवाई।

जीव कर्म बस आता जग में और कर्म बस जाता,
पर ईश्वर करुणा बस आता नित करुणा बरसाता।

जैसे कपड़े के रँग रँग में केवल रूई होती,
वैसे ही तन रोम रोम में जलती ईश्वर ज्योती।

ईश्वर के तू अंश पियारे उसमें ही खोना है,
वह आये ना आये तुमको लीन वहीं होना है।

ईश्वर ही सुख सुख ही ईश्वर ताकर अंश स्वरूपा,
स्व स्वरूप को जान पियारे वहीं रहत सुख भूपा।

दीखत दूर ईश पर होवत अतिशय पास तुम्हारे,
उसकी करुणा कृपा होत नित हर क्षण तेरे द्वारे।

वुधि वर्णन नहिं कर सकती अस ईश सत्य शिव सुन्दर,
उस असीम सम नाहीं पावक भू नभ वायु समुन्दर।

तन जैसा गद्दार नहीं जग ईश्वर जैसा साथी,
इक छोड़े असहाय जान कर इक हो जाये पाथी।

ईश्वर

जो स्वरूप अरु ईश माहिं मनु भेद न जाने कोई,
सोइ होत जाग्रत मानव जग ईश्वर सम सो होई।

जहाँ जहाँ गुण दीखे जानो ईश्वर की प्रभुताई,
हर विशेषता में उसकी ही सुछवि जगत में छाई।

मत बाटो धरती को मानव अनगिन रेखाओं में,
हर कण कण में ईश बसा है हर कोमल भावों में।

खड़ा द्वार पर पथिक भले हो कोई ईश्वर जानो,
दे भोजन कर तृप्त पियारे धन्य स्वयं को मानो।

तेरे में जो है उसमें भी वही अनन्त सुहाया,
तू सब में तुममें सब ही हैं क्यों न जान तू पाया।

ईश्वर कहता मैं ही आत्मा हर स्वरूप है मेरा,
मेरे ही विभूति से मिटता इस जग का अंधेरा।

देना तो उसका स्वभाव है प्यारे वह तो देगा,
गिरे भले हो तुम खाईं में तुम्हें उठा ही लेगा।

रोज सुबह उठ मैं सूरज को देख चकित रह जाता,
परम पिता अपनी करुणा नित किस हद तक बरसाता।

उसकी उर्जा ले तुम उठते पर जब थक जाते हो,
तब अपने को रात रानि के आँचल में पाते हो।

कितनी कृपा ईश की भाई रोज उठता तुमको,
प्राण वायु दे तुम्हें जिलाता मोक्ष दिलाता सबको।

वही बर्फबारी ज्वालामुखि अरु भूकम्प समाये,
वही सुनामी सूखा वर्षा क्यों तुम देख न पाये।

ऊँच नीच सबका वह ईश्वर भेद नहीं करता है,
पर तुम क्यों विश्वास न करते सबके हिय रहता है।

जाकर माया नित्य नचाये वही ईश विज्ञानी,
जाकर सारा यह जग जीवन सोइ पूर्ण है ज्ञानी।

मैं तेरा ही हूँ सुपुत्र प्रभु चाह रहा विश्वासा,
मिल पाऊँगा या नाहीं मैं ईश्वर देहु दिलासा।

अनुकम्पा जानो ईश्वर की तेरे सँग नित रहता,
भू जल पावक गगन हवा नित तेरे अर्पण करता।

उसकी करुणा से ही मिलता अनल अनिल अरु पानी,
पैर तले आधार दिया मनु सर ऊपर नभ तानी।

बिन उसकी करुणा के कोई क्षण भर जी नहिं सकता,
वह निर्दोषी सुहृद जीव सँग नित्य पिता सम रहता।

जल में थल या थल में जल है जाने एक खुदाया,
तन में ईश्वर, ईश्वर में तन ज्ञानी जानत भाया।

करुणा सागर कृपा सिंधु प्रभु प्रेम समुद्र पियारे,
तू मेरा मैं तेरा भगवन मेरे आप सहारे।

दोहा- ईश्वर सम जानो जगत सब जग आप समान,
जो जाना मानव वही अनजाना पशु मान।

सदगुरु

जहँ दया करुणा प्रेम सदगुण शील हिय झर झर बहे,
विज्ञान ज्ञान समत्व शीतलता सरलता नित रहे।
जिसके मधुर अमृत वचन से विश्व में नव आश हो,
सदगुरु वही जा हृदय में संपूर्ण जग का वास हो।

जिसके चरण रज से जगत की मोह माया सब कटे,
संसार की सब कामना भय द्वेष ममता छन छटे।
रह जाय नहिं तनिको हृदय में राग द्वेषी भावना,
हर मन वचन अरु कर्म गंगा जल सदृश हो पावना।

हो जय पराजय हानि नाहीं लाभ सुख दुख कुछ जहाँ,
नहिं मान अरु अपमान यश अपयश प्रगति अवनति तहाँ।
जिस हृदय में सत चित सदा आनन्द फुलवारी खिले,
जहँ ताल सुर संगीत गीत सुघोष हिय भीतर तले।

जहँ शुष्क जंगल सम जले भय क्रोध ज्ञान प्रकाश में,
जहँ नित्य बरसे कृपा करुणा अवनि अरु आकाश में,
जहँ हो जगत कल्याण की बस भावना अनुराग से,
तुम उस महाआत्मा पुरुष का वंदना कर प्यार से।

हो नित समर्पित ढूँढ़ते रहना सदा तुम सदगुरू,
मिल जायगा इक दिन तुम्हें तू खोज तो अब कर शुरू,
गुरुमुख तभी होना मिले सदगुरु जबहि संसार में,
ढोंगी गुरू करना नहीं भल मृत्यु हो मजधार में।

मिलत ज्ञान सदगुरु से होवत तबही सत्य प्रकाशा,
अन्दर बाहर ज्योति जले पुनि जग में होत उजासा।

बिन गुरु दीप जले नहिं ता बिन ईश्वर नहिं मिल पाये,
सत असत्य तनिको नहिं दीखे बिन हिय दीप जलाये।

हिय सागर में प्रेम असीमित बुधि में ज्ञान प्रकाशा,
पर सदगुरु बिन कबहुँ न करना सत्य ज्ञान की आशा।

गुरु बिन नहिं उद्धार जगत में बुधि बिन नाहिं प्रकाशा,
बिन सदसंग विवेक न भाई जानत चन्दरदासा।

मन्दिर मसजिद गिरजा तीरथ गुरुद्वारा भल छूटे,
पर सदगुरु का संग लोक दुइ महँ कबहूँ नहिं टूटे।

गुरु उपदेश शास्त्र पथ चलि के को न तरल जग भाई,
पर कुपंथ पर चलने वाला होवत क्रूर कसाई।

संत तीर्थ सम चलता फिरता ईश रूप तुम जानो,
वचन होत गीता पुराण सम कर्म धर्म सम मानो।

चित्त शुद्धि आधार ध्यान है ध्यान मूल गुरु पूजा,
गुरु पूजा कै फल होवत पुनि जनम होत नहिं दूजा।

बुधि में अदभुत ज्ञान छिपा पर गुरु बिन प्रगट न होई,
ज्यों पत्थर में अग्नि रहे पर जानत कोई-कोई।

गुरु देता सबको प्रकाश पर जो पाया सो जागा,
जो पाया नहिं सोइ जगत में मानव होत अभागा।

गुरु शरणागत होवत जोई सो ज्ञानी कहलाये,
ताकर वाणी नित्य निरन्तर प्रेम सुधा बरसाये।

संत वही जो सकल इन्द्रियों को बस में कर देखे,
कैसी भी हो घटना स्थिति कर ले आप सरीखे।

ज्यों शीतल जल सबको सम्यक शीतलता देता है,
त्यों हर साधक ऊपर सदगुरु परम कृपा करता है।

गुरु बिन ज्ञान होत नहिं कबहूँ मुक्ति नहीं बिन ज्ञाना,
बिना मुक्ति के जनम मरन का छुटे न ताना-बाना।

अग्नि संग काला कोयला भी सदा दमकता रहता,
त्यों सदगुरु सँग मंद बुद्धि नर निरमल पावन बहता।

पढ़ि पढ़ि शास्त्र भये पंडित पर सत्य ज्ञान नहिं पाये,
बिन सदगुरु के सत्य ज्ञान का दीपक कौन जलाये।

मानव निज उद्धार हेतु तू शरण गुरू के जाना,
वही बताये क्या होता जग आत्मा अरु भगवाना।

गुरु वाणी सुन हिय तल उपजे जब परमारथ भावा,
तबही सार्थक जान वचन तू वरना होत छलावा।

सदगुरु को ही ब्रह्म जान जो जग महँ प्रगट दिखाई,
गुरु भीतर ही रहता ईश्वर होत यही सच्चाई।

करो नमन गुरु श्रीचरणों में भरि श्रद्धा विश्वासा,
तबही पूरण होई तोरी ईश्वरीय अभिलाषा।

सद्गुरु

मुक्त हुआ जो वही और को मुक्ति राह दिखलाये,
सच्चा सदगुरु वही सहारा गिरते का बन जाये।

संत स्वभाव सरल मृदु वाणी कर्म सदा उपकारी,
शम दम नियम संग चिन्तन अरु नित एकान्त पुजारी।

प्रकृति कराती बाहर यात्रा आलस नींद सताये,
पर अन्दर की यात्रा प्यारे सदगुरु हमें सिखाये।

मोह रूप दलदल में फँसि नर तड़पत सूक समाना,
निकल सके वह ही होवत गुरु ज्ञानी द्विज विज्ञाना।

गुरु से उऋण हुआ नहिं कोई नहिं भविष्य में होई,
एक मंत्र दे करता मानव मन उजियाला सोई।

कुटिल क्रूर मानव प्रति सदगुरु औषधि होत महाना,
दर्शन दे सतकर्म सिखावत भरत मनहि महँ ज्ञाना।

अपरिग्रह से बड़ा न कोई होत धर्म जग भाई,
पर सदगुरु शिक्षा कै संग्रह होवत सत फलदाई।

सदगुरु कृपा बिना नहिं मानव कभी ईश तक जाता,
ईश कृपा बिन मानव जग में गुरु तक पहुँच न पाता।

दोहा– पाना है जो सत ज्ञान तो ढूँढ़ो गुरु धरि ध्यान,
बिना सूर्य होवे नहीं जग में कबहुँ बिहान।

संसार

जहँ अनित क्षणभंगुर सनश्वर आदि अंत विकार हो,
जीवन मरण सुख दुख पराजय जय निरन्तर सार हो,
जहँ हाँनि लाभ समान आवत जात सो संसार है,
भू अनिल जल आकाश पावक से रचित साकार है।

आरम्भ मध्य व अन्त इसका कब कहाँ अनुभव नहीं,
नित दीखता है रूप जैसा यह यथावत है नहीं,
है विषय रूपी कोंपलों की डालियाँ व्यवहार में,
जहँ सत्व रज तम तीन गुण ही व्याप्त हैं संसार में।

संसार ईश्वर रूप मनु सम्मान इसका कर सदा,
हर जीव पर अपना समर्पण नित निरन्तर कर अदा,
वह ब्रह्म कर का इक खिलौना ब्रह्म का आकार है,
हर वस्तु व्यक्ति व क्रिया का इक रूप यह संसार है।

जिसे न पाने की है कोई राह वही संसारा,
जिसे न खोने का भय कबहूँ ईश्वर वही पियारा।

जग से अलग रहो ज्यों जल से कमल अलिप्त सुहाये,
तब लागे संसार ईश सम भेद नजर नहिं आये।

जग सराय इक सुन्दर प्यारे छोड़ इसे है जाना,
मत कर लोभ मोह रे मूरख अन्त पड़े पछताना।

अपनो से वह गैर भला जो ईश राह ले जाये,
प्यारा भी दुस्मन समान है जो हरि राह छुड़ाये।

डूब जाइ जीवन नौका यदि काम क्रोध जकड़ा हो,
नाव पार नहिं हो सकती यदि लंगर तीर गड़ा हो।

आवत जात रात दिन जैसे नित्य धरा पर भाई,
तैसहिं सुख दुख आवत जावत रहत नाहिं स्थाई।

सत रज तम गुण का मिश्रण है यह नश्वर संसारा,
तीनों ही का खेल मुनज को बाँधे विविध प्रकारा।

अचरज देख जगत में भाई जल में मीन पियासी,
मूरख मनुज नित्य चिल्लाये पर ज्ञानी लखि हाँसी।

कर जग का सम्मान यही है ईश्वर की प्रभुताई,
राग द्वेष तजि पर सेवा कर तब ही मिले खुदाई।

आज नहीं तो कल जाना है चलत न एक बहाना,
जग है मौत सिंधु ताही महँ डूबत सकल जहाँना।

बाँध रखे क्यों जगत बोझ सर छूट सभी है जाना,
रोक सके नहिं कोई जग में मौत एक दिन आना।

सिर चढ़ बोल रही मिट्टी हैं मिट्टी तेरी हस्ती,
डूब न जाओ जग में इतना डूबे तेरी कस्ती।

जिसने खाई हलुआ पूरी उसे न छाँछ सुहाये,
जिसने पीया राम नाम रस उसे जगत ना भाये।

एक बार जो जगत जाल में उलझत निकलत नाहीं,
उलझि मरत ज्यों कीट मकोड़ा मकड़ी जालहि माहीं।

माँ बालक का पेट देखती स्त्री देखे थाती,
योगी नित्य प्रकाश देखता भोगी देखे छाती।

धर्म और विज्ञान एक हो तो कल्याण जगत का,
इक अन्दर इक बाहर साजे फूले फूल चमन का।

जग में जो कुछ होना है सो होकर चन्द्र रहेगा,
रोक सका नहिं अब तक कोई और न रोक सकेगा।

ज्ञानी कहता जग नश्वर है मूरख कहता साँचा,
मैं कहता यह प्रभु माया की है इक सुन्दर ढाँचा।

काँटों से नफरत मत करना जग काँटा फुलवारी,
सुख दुख जन्म मृत्यु यश अपयश मिलत मान कहिं गारी।

तू जिसको जीवन भर पाला प्राणों से बढ़ माना,
आज वही मुख मोड़ चला होकर तुमसे बेगाना।

छूटेंगे सब संगी साथी टूटेगा सब सपना,
क्यों जगती से आश लगाते कोई होत न अपना।

कह कह थके फकीर संत मुनि जग सराय इक प्यारे,
नाहीं नेह लगाना इक दिन जाना है प्रभु द्वारे।

कह कह संत गये बहुतेरे जगत एक सपना है,
पर अज्ञानी मानत नाहीं कहत जात अपना है।

त्याग जगत को ही तुम प्यारे जग को जान सकोगे,
पर ईश्वर से आत्म भाव हो तुम पहचान सकोगे।

ईश्वर का ही होकर जीता वह ईश्वर हो जाता,
पर जो जग को सरवस समझे जग से मुक्ति न पाता।

जग में ऐसा सुख नाहीं जो जीवन भर मिल पाये,
जा महँ रोग शोक दुख पीड़ा दीमक नहिं लग जाये।

भगत ईश की बात करे तो समझें लोग दीवाना,
पर वह हर्षित लखि ईश्वर छवि मोही व्यथित जहाँना।

जाग मुसाफिर जग मेले में वरना खो जाओगे,
भूल भुलैया सारी जगती तू नहिं मिल पाओगे।

दुखमय यह संसार पियारे दुख तो साथ रहेगा,
कर ले सुमिरन भजन ईश का दुख तो वही हरेगा।

जन्म मृत्यु के बीच सकल जग दुख स्वरूप कहलाये,
इस दुखमय जगती में सुख की क्यों तू आश लगाये।

गूँगा बन जाना पर अपना दुख कबहूँ नहिं कहना,
सुन हँसते हैं जगती वाले जगत संग नहिं बहना।

जगत एक सुन्दर मेला है ताकर गगन बिताना,
यहाँ जीव सब तेरे अपने सबको गले लगाना।

जगत संग नाता है दुख का सुन लो मेरे भाई,
पर परमात्मा संग नित्य सत चित आनन्द सुहाई

करि निर्माण शान्ति सुख चाहे वह पागल होता है,
बिना सृजन के सारे जग में मनु विष ही बोता है।

मात पिता पुत्तर भाई मित पत्नि पड़ोसी प्यारा,
इनसे बड़ा न हितकर दूसर जानो यहि संसारा।

माया आँखों से देखोगे जगत विभक्त दिखाये,
पर माया पट हटते ही जग अविभक्त हो जाये।

मिट्टी ढेला पत्थर कंचन गिरि वन खग पशु मोती,
ज्ञान चक्षु से दीखे सरबस एक ईश की ज्योती।

जब तक साँस तभी तक आशा तब तक ही संसारा,
पुनि अनन्त यात्रा होती क्यों मानव तू न विचारा।

कोई कहता जग झूठा है कोई कहता साँचा,
मैं कहता जग ही ईश्वर है ईश्वर ही जग राँचा।

दोहा- जगत प्रकृति का अंश इक असत अनित्य असार,
जहाँ मनुज ढूँढत सदा क्रिया पदार्थ अपार।

आत्मज्ञान

अन्तःकरण होवत प्रकाशित ज्ञान दीपक जब जले,
तब तृप्त होवत आत्मा अरु कर्म निस्पृह हो फले,
जब आत्म ज्ञान मनुष्य को होता महात्मा है वही,
उसको सदा दीखे अखिल ब्रह्माण्ड आत्मा सम यही।

बिन आत्म ज्ञान मनुष्य जग में शान्ति सुख पावत नहीं,
बिन शान्ति सुख मानव जनम है व्यर्थ क्यों मानत नहीं,
फिर मनुज पशु के बीच कछु अन्तर नहीं रह जायगा,
फिर आत्म अरु परमात्म का संयोग हो नहिं पायगा।

अन्तःकरण महँ भेद प्रति जब तक न समता लव जले,
हिय माहिं करुणा प्रेम नमता सरलता नित नव फले,
शम दम नियम शुचिता अहिंसा सत्य शील कमल खिले,
तब तक न आत्म प्रकाश भीतर घोर अधियारा पले।

होवत सुज्ञान स्वरूप का हिय महँ तबहि ज्योती जले,
लखि आप से मनु आप को संतुष्टि कमल हृदय खिले,
तब होत आत्मा स्वयं का बंधू सुहृद मित बाप ही,
तब हे मनुज उद्धार कर्ता होत आपन आप ही।

जनम मृत्यु पुनि जनम जीव कै यही नियति सच भाई,
बीच माहिं माया कै नगरी छूट यहीं सो जाई।

आत्मा तन महँ रहत न दीखत ज्यों लकड़ी महँ आगा,
गंध फूल महँ दूध माहिं घी सकल ज्ञान कै भागा।

मैं मालिक मन सेवक भाई जानत सोइ सुखारी,
पर देखो मनु एक अचम्भा मालिक बना भिखारी।

धर्म वही जो प्रेम राह पर चलना नित सिखलाये,
मानव अन्दर मानवता की अविरल ज्योति जलाये।

परमात्मा में प्रीति नहीं तो तज तन विष सम भाई,
हो चाहे वह मित्र पियारा हो चाहे पितु माई।

हो चाहे वह हिन्दू मुसलिम चाहे सिक्ख इसाई,
मानव केवल वही जो देखे सब में एक खुदाई।

काम बिना नहिं क्रोध सताये मोह बिना नहिं माया,
ईश बिना नहिं प्रेम सुहाये ज्ञान बिना नहिं काया।

बिन सूरज नहिं दिन हो पाये जात नाहिं अधियारा,
ज्ञान बिना नहिं होत मनुज मन कउनउँ विधि उजियारा।

करम धरम संतान व तिरिया बंधन होत न भाई,
पर मोहित हो जो मतवाला सो मूरख बँध जाई।

प्रेम न सीमा में बँध पाये व्यर्थ दान नहिं जाये,
त्याग सदा यश कीर्ति बढ़ाये मनुज मुक्ति पथ पाये।

तन निहार हर्षित होते तू किस मद में कह चन्दर,
लुट जायेगी तोर जवानी शेष राख का मन्जर।

मौन भला पर बोलो जब तुम खोल हृदय मृदु वानी,
जहर पिलाने से अच्छा है पिला शुद्ध तू पानी।

जीव जीव में भेद नहीं कुछ झाँक हृदय में भाई,
दीखे हर हिय एक चेतना कृपा ईश की छाई।

टाले टले न मौत किसी से अटल सत्य तू जानो,
कर लो भीतर की यात्रा तू निज स्वरूप पहचानो।

जो ईश्वर रँग में रँग जाये और रँग नहिं भाये,
फिर जग में बिन ईश्वर कोई जीव नजर नहिं आये।

जब सारा जग सोता साधो तब ज्ञानी जगता है,
वाह्य समा बुझ जाये पर हिय दीपक नित जलता है।

खोजत खोजत मैं खो जाता वही स्वयं को पाता,
पर जो मैं को खो नहिं पाता वह जग में बधि जाता।

सूर्य समान प्रकाश न दूजा सिंधु समान न पानी,
ज्ञान समान नाहिं पथ कोई जाने केवल ज्ञानी।

सत्य अहिंसा प्रेम बिना नहिं मानव मनुज कहाये,
आत्म ज्ञान बिन जीव ब्रह्म का नहिं रहस्य खुल पाये।

तोड़ बाग से फूल भले तुम नित अर्पित करते हो,
पर क्या हृदय कमल ईश्वर के चरण माहिं धरते हो।

भले जला नहिं पाये बाहर धूप दीप की बाती,
पर हिय भीतर ईश प्रेम की जला ज्योति दिन राती।

हर मानव के भीतर बैठा देव जानवर दोई,
जगा देव को चन्दर वरना जाग जाइ पशु कोई।

विकट मिलन की चाहत तेरे हिय में जब भर जाई,
तबहि ईश की प्रेमा भक्ति बरबस तोहिं जगाई।

बिन श्रद्धा के जप तप कीर्तन ध्यान धरम व्यवहारा,
होवत सरवस ढोंग पियारे होई जनम दुबारा।

सत्य प्रेम श्रद्धा आस्था अरु करुण दया विश्वासा,
शृजन करत जग इनसे ईश्वर ताते हिय के पासा।

सत्य प्रेम ईश्वर स्वरूप मनु चेतन तत्व कहाये,
जगत प्रेम जड़ राग स्वरूपा स्वार्थ वेष धरि आये।

बिना त्याग के कोई यात्रा सफल नहीं हो पाई,
बिन हिय दीप जलाये प्यारे ईश्वर नाहिं दिखाई।

दो पवित्र हिय जहँ मिलते तहँ प्रेम सिंधु लहराये,
ज्यों गंगा यमुना संगम थल तीर्थराज हो जाये।

त्याग सकल सुख माँ कहलाती डाली फल दे झुकती,
शीतलता दे निश दिन नदियाँ नीचे नीचे बहती।

किरपण मत बन तू हे मानव बन जा कूप समाना,
ऊपर से जल करत निछावर भीतर भरत खजाना।

विषय वासना से मानव मन कामी क्रोधी होता,
मोह रूप दलदल में फसि के राग द्वेष में रोता।

ऐसा कर्म करो कृत तेरा ईश विनय बन जाये,
तन मन सुध बुध भूल आत्म रस में नित डूब नहाये।

आत्मज्ञान

बिन संतोष न शान्ति मनुज मन व्याकुल रहत बिचारा,
ध्यान बिना संतोष न भाई त्याग बिना न किनारा।

ज्यों पृथ्वी के गर्भ छिपा धन जो खोजे सो पाये,
त्यों खोजत जो अन्तस्थल में ज्ञान ज्योति मिल जाये।

चित अवसाद रहित हो तबही हिय महँ शान्ति अपारा,
काम क्रोध से रिक्त बुद्धि महँ जलत ज्योति उपकारा।

सागर की गहराई में ज्यों हलचल होत न भाई,
त्यों आत्मा महँ राग द्वेष भय काम क्रोध नहिं छाई।

भय विहीन होकर ही मानव शीलवान बनता है,
भय शापित राजा भी जग में अधम होइ मरता है।

तन गाड़ी तू चालक. चन्दर मंजिल तक है जाना,
जीवन रहते स्व स्वरूप को अन्दर ही है पाना।

हरियाली छाये जब बरसे मेघ खेत गिरि कानन,
त्यों सतसंगति घन बरसे तब प्रफुलित मन बुधि आनन।

भक्त वही जो सदा हृदय से प्रभु पूजा करता है,
प्रभु मेरे मैं प्रभु का केवल भाव एक रखता है।

बाहर का तू जगत देखते झाँक न देखे अन्दर,
देख जरा भीतर की नगरी होवत सात समुन्दर।

काम संग ज्यों क्रोध रहत ज्यों लोभ संग ज्यों अत्यागी,
जैसे काया के संग छाया विषय संग त्यों रागी।

आत्मज्ञान

जड़ जमीन में हो तो साधो हरियाली छायेगी,
नभ में लटक रही हो जड़ तो सूख लता जायेगी।

जैसे भूख सदा भोजन से ही मिटती है प्यारे,
वैसे ही आत्मा अनन्त सुख पावत योग सहारे।

क्रोध होत जड़ मन अशान्ति की काम क्रोध कै भाई,
होत काम कै मूल राग जो जाने मुक्त कहाई।

मन के ऊपर बुद्धि विराजे बुधि के ऊपर ज्ञाना,
ताके ऊपर आत्म विराजे ता ऊपर भगवाना।

तन नाते तू पंचतत्व हो दास जीव के नाते,
पर अध्यात्म दृष्टि से आत्मा ईश ज्योति कहलाते।

बीज दिखे जस पहले वैसहिं अन्त घड़ी महँ भाई,
तना फूल फल डाली पाती अन्त न एक दिखाई।

धर्म मूल श्रद्धा विश्वासा कर्म मूल सच्चाई,
ज्ञान मूल है आत्म दृष्टि अरु ध्यान मूल गहराई।

साधो तेरी आत्मा जब यह काया तज जायेगी,
आँख खुली की खुली रहेगी देख नहीं पायेगी।

जो नहिं जागा जग को माना अपना और पराया,
जो जागा उसको सारा जग ईश समान दिखाया।

अन्दर में आनन्द असीमित बाहर दुख संसारा,
अन्दर ज्योतिर्मय प्रियतम छवि बाहर अति अंधियारा।

बाहर बन्ध मुक्ति अन्दर है असत एक सत जाना,
बिन घन अन्दर बरसत करुणा बाहर पागल खाना।

अनहद नाद बजत अन्दर में बाहर ढोल मजीरा,
एक सुनत आनन्द सुहाये एक सुनत भव पीरा।

पूर्ण समर्पण ही पूजा है पूर्ण ज्ञान ही ईश्वर,
पूर्ण कर्म ही पूण्य कहाये पूर्ण धर्म है अन्दर।

द्वेष नहीं रखना मन अन्दर खुद ही जल जाओगे,
मन अन्दर हो शान्ति तभी तू सत शिव लख पाओगे।

अन्दर ज्ञान ज्योति तो सारा जग आपन हो जाये,
कोई रहे पराया नाहीं परहित भाव सुहाये।

काम क्रोध मद मोह लोभ अरु मत्सर दुख के गागर,
पकड़त जो डूबत त्यागत जो पार जात भव सागर।

जीवन के हर साँस संग जो राम नाम धुन गाता,
ताकर जीवन धन्य सोइ भव सिंधु पार हो पाता।

यह शरीर नश्वर क्षणभंगुर कर्म अमर कहलाये,
कर तू कर्म जगत में ऐसा जनम धन्य हो जाये।

अज्ञानी जन माया में बँध तेली बैल कहाते,
पर ज्ञानी दुख में भी हर्षित राम नाम धुन गाते।

चिन्ता माहिं फसल जहँ बुधि मन वहाँ ज्ञान नहिं होई,
जहाँ ज्ञान तहँ चिन्ता ममता द्वन्द द्वेष भय खोई।

जहाँ ज्ञान तहँ संशय नाहीं सुख दुख ममता माया,
कोई नहीं पराया जग में सबही आत्म समाया।

पावन होता प्रेम जगत में राग अपावन भाई,
एक खिलाये फूल हृदय में काँटा एक चुभाई।

देइ देइ आनन्दित योगी सदा आत्म सुख पाता,
लेइ लेइ प्रफुलित भोगी पर अन्त घड़ी पछताता।

चाहे जग को ईश मान या ईश्वर को जग मानो,
सत्य जानने का पथ दोई चन्दर कहत सयानो।

मन असीम नभ सा कर भाई तब समाइ संसारा,
राग द्वेष से भर जाई तो मिली न कबहुँ किनारा।

हर प्राणी का आदि मध्य औ अन्त तीन ही काला,
कर ले राम नाम का सुमिरन तबही मिली कृपाला।

जब ममता मन को भरमाये समता हिय भर लेना,
एक निमिष महँ सारी संसृति लागे खेल खिलौना।

कीचड़ में ही कमल खिले पर लिप्त न जल में भाई,
त्यों आत्मा नित रहत देह में माया बाँध न पाई।

जग बन्धन में मन फँसता पर भोगत आत्म दुलारा,
जाकर चेतन अमल सत्य शिव शाश्वत रूप पियारा।

ज्यों लहरों के मिटने से मनु सिंधु नहीं मिट जाता,
त्यों तन के मरने से आत्मा कबहुँ नाहिं मर पाता।

आत्मज्ञान

बिन प्रकाश कुछ दीखत नाहीं क्यों तू जान न पाये,
फिर अन्दर प्रकाश बिन कैसे आत्म स्वरूप दिखाये।

सूरज तो दिन में प्रकाश दे आत्मा निश दिन देता,
जब सारा जग छोड़ चले तब अंक आत्म भर लेता।

सत्य अहिंसा त्याग तपस्या मधुर मनोहर बानी,
राग द्वेष से रहित बुद्धि मन होवत जग कल्यानी।

जो देखे कण कण में उसको वह ज्ञानी होता है,
पर जो देख सके ना मानव सूर होइ मरता है।

पूछत ही तुम नाम बताते फलाँ नाम है मेरा,
पर तुम शाश्वत सत्य नित्य अज अव्यय अगम अघेरा।

समता से ममता मिट जाये मोह मिटे सत ज्ञाना,
सुमिरन से जग भय मिट जाये कर अभ्यास महाना।

घड़ा घड़े की चिन्ता करता मिट्टी को ना जाने,
त्यों हम अपनों में उलझे नित बिन स्वरूप पहचाने।

कर ममता का त्याग हृदयसे ध्यान लगा तू भाई,
ममता तो ममता उपजाये ध्यान मिलाये साई।

ऊँच नीच कोई भी मानव यदि सुमिरन करता है,
तो साधू उसको जानो वह आत्मा में रमता है।

धरम न केवल मंदिर मसजिद तीरथ धाम नहाना,
धर्म हरेक चित्त में बैठा आत्म रूप भगवाना।

बीज रूप में हिय के अन्दर धर्म पड़ा रहता है,
अक्षय वृक्ष सदृश बढ़ता जब शुभ अवसर मिलता है।

जो भी दूर हुआ माया से सत्य वही पहचाना,
मृत्यु समय आह्लादित कहता अब मैं तुमको जाना।

आत्म ज्ञान होते ही ममता माया बाँध न पाती,
जो पानी में खड़ा उसे कह कैसे आग जलाती।

जो चाहे संसार सिंधु से पार उतरना भाई,
राम नाम पतवार हाथ ले भव सागर तर जाई।

गंगा में स्नान किया जो ताकर कंचन काया,
राम नाम गंगा में डूबा मिटे सकल जग माया।

जन्म मृत्यु है खेल जीव का ईश हाथ में डोरा,
कठपुतली सम नाचत मानव रहत आत्म नित कोरा।

इसी जनम में यदि जाना है भव सागर के पारा,
हो असक्त हिय समता कर ले राम नाम पतवारा।

जैसे औषधि रोग दूर कर तन चंगा करता है,
वैसे ही चिन्तन आध्यात्मिक आस्था मन भरता है।

मन से कर ले ईश्वर पूजा तन से सेवा जग की,
क्या जाने कब उड़े पखेरु बात करे क्यों कल की।

इक दिन यह तन जल जायेगा कोई काम न आये,
कंकड़ पत्थर ढेर जुटाया संग एक नहिं जाये।

बाहर की हर दौड़ बनाता भिक्षुक हर मानव को,
पर भीतर की दौड़ दिखाता नव प्रकाश जीवन को।

कहाँ कब तलक किये प्रार्थना ताकर मूल्य न भाई,
कितनी गहराई है उसमें होत यही सच्चाई।

जीव कहाँ का रहने वाला कौन जान पाया है,
बाँट रहे क्यों हिन्दू मुसलिम सब उसकी माया है।

जैसे बीज छिपा हर तरु में ज्ञान छिपा मन माहीं,
अग्नि छिपा जैसे पत्थर में ईश छिपा हर ठाहीं।

देते रहना ही जीवन है निश दिन प्रकृति लुटाती,
तुम ईश्वर के अंश देइ नित रहो सुखी दिन राती।

पशु पशु ही पैदा होता अरु पशु ही रह मर जाता,
पर मानव बुद्धत्व प्राप्त कर जीवन सफल बनाता।

संतो के आगे चतुराई मनुज नहीं चलती है,
मूर्ख समर्पण कर नहिं तो जग मुक्ति नहीं मिलती है।

स्वर्ग नर्क में भेद नहीं कुछ दोनों में फल खिलता,
एक माहिं सुख एक माहिं दुख भोगि जनम पुनि मिलता।

नर्क होत दुख सागर भाई स्वर्ग होत सुखधारा,
पर दोवहु का अन्त एक पुनि होवत जन्म दुबारा।

राग होत वैराग्य होत मनु सब कहलाये माया,
पर जिसमें अनुराग होत वह मानव धन्य कहाया।

आत्मज्ञान

स्व ही है आनन्द कुंज तुम पहचानों तहँ जाई,
देखो अन्दर की विशालता नभ समान है छाई।

तन नहिं तेरा तू तन नाहीं अहंकार क्यों करता,
अनहंकारी शुद्ध आत्म तू दंभ दर्प क्यों भरता।

बूँद बूँद से कौन सिंधु को भर सकता है भाई,
पर सागर में डूबि बूँद पुनि सागर तो बन जाई।

जाकर जागृत ज्ञान सोइ कै हृदय कमल खिलता है,
आलस निद्रा अरु प्रमाद से अंधकार मिलता है।

तन पीड़ा की औषधि से नहिं अन्तर दुख मिटता है,
त्यों बाहर की यात्रा से मन अमल नहीं होता है।

पावन हो हिय तो जग सारा अति सुन्दर शुभ लागे,
पाप छिपा अन्दर तो बाहर सुन्दरता कस जागे।

सहम देखती प्रकृति पियारी मनुज मनुज जब लड़ते,
बैठा ईश हृदय में फिर भी क्यों न होश में रहते।

गीता वेद पुराण पाठ से ईश्वर ज्ञान न होई,
कर तू खोज आत्म चिन्तन से गठरी अन्दर खोई।

अन्दर की यात्रा ही तुमको अभय अनन्त बनाये,
गहराई कारण ही सागर अति असीम कहलाये।

एक सत्य का ही हर ज्ञानी अनुभव हिय में करता,
भले अलग भाषा बोली हो सत्य एक ही रहता।

सुख की चाहत दुख का भय ही जग बंधन कहलाये,
मुक्त हुआ जो साधु संत अरु सदगुरु सिद्ध कहाये।

जैसे मिश्री का स्वभाव मीठापन कबहुँ न जाई,
तैसे सत्य न कबहूँ बदलत सुख हो या दुख भाई।

ध्यान साधना से जब मन बुधि अमल सरल हो जाये,
तब ही प्रगटत सत्य ज्ञान हिय आत्म ज्योति जल पाये।

पूर्ण ब्रह्म के अंश पूर्ण तुम पूर्ण जगत में आये,
क्यों अपूर्ण तू मान स्वयं को अंधकार में छाये।

जिसके अन्दर करुणा समता दया प्रेम हो भाई,
वही जगत को दे सकता पथ अन्तर ज्योति जलाई।

भीतर का जब दीप जले तब मौत बुझा नहिं पाये,
अंधकार ज्यों सूर्य सामने साधो कभी न आये।

लौकिक विद्या रोटी कपड़ा अरु मकान देती है,
पर आध्यात्मिक निज स्वरूप से तार जोड़ लेती है।

ईश्वर की असीम करुणा जो नींद तुम्हें नित आती,
वरना पागल होइ रात दिन मानव पीटत छाती।

नश्वर में शाश्वत अनित्य में नित्य मृत्यु में जीवन,
दुख में सुख तो अंधकार में ही प्रकाश का मधुवन।

वस्तु व्यक्ति या परिस्थिति से सुख न कभी मिलता है,
सुख तो सुन्दर भाव हृदय में फूल होइ खिलता है।

अन्तःतार जुड़ा ईश्वर से तोड़ नहीं पाओगे,
कितनी दूर भले चलि जाओ खींच यहीं आओगे।

माया परदा फाड़ पार झाँको तो सत्य दिखेगा,
सत स्वरूप तू जान पियारे तब ही हृदय खिलेगा।

पानी का बुलबुला सिंधु से अपना सत चित माँगे,
सुन सागर कहता बूँदों से अन्दर झाँक अभागे।

ईश्वर ही सुख सुख ही ईश्वर ताकर अंश स्वरूपा,
स्व स्वरूप को जान पियारे वहीं रहत सुख भूपा।

संतों का सम्मान किये पर संत वचन नहिं माने,
मान लिये जो जन्म मृत्यु से मुक्त हुए दीवाने।

ज्ञान वही अज्ञान नाश कर भीतर ज्योति जलाये,
निज प्रकाश से सारे जग को ज्योतिर्मय कर जाये।

जीवात्मा का लक्ष्य एक है मुक्ति सत्य मिल जाये,
जग बंधन को काट पाँव नव पथ ऊपर बढ़ पाये।

ईश्वर पथ पर वह चलता जो स्व स्वरूप को जाने,
मायावी पागल तो कैसे ईश्वर को पहचाने।

ध्यान मृत्यु में भेद नहीं कुछ दोउ आत्म को भाये,
ध्यान मृत्यु का तुमको जीते जी आभाष कराये।

श्रद्धा सत्य अहिंसा समता चारो सँग जहँ रहते,
जीवन में सुख शान्ति उसी के हृदय माहिं प्रभु वसते।

जैसी होती दृष्टि तुम्हारी वैसी जगती दीखे,
मन में प्रेम भरा हो तो जग लागे प्रेम सरीखे।

यह तन शिशु बालक युवान पुनि अति बूढ़ा हो जाता,
जानत पर हे आत्म बता तू तन से क्यों बँध जाता।

मन में होती ममता भीतर हिय में समता भाई,
निकले जो मन से ममता तो भीतर समता छाई।

शास्त्र अध्ययन से ही होता सत असत्य का ज्ञाना,
का होवत निष्कर्म कर्म कछु रहत न द्वन्द अजाना।

साधु संत कै दर्शन जग में होवत तीर्थ समाना,
तीरथ फल ततकाल न दीखे दर्शन फल जग जाना।

दूध घीव गुड़ शहद पिलाओ सर्प जहर नहिं जाई,
छोड़त नहिं कड़ुवाहट कबहूँ नीम करैला भाई।

काम क्रोध सम रोग न दूसर मोह समान न बंधन,
ज्ञान समान न ज्योति जगत महँ पुत्र मृत्यु सम क्रन्दन।

सिर ऊपर दारिद्र विकट हो कौन धर्य रखता है,
धैर्य बिना कह कौन जगत में मनुज मनुज रहता है।

मृग मानव कै इष्ट हृदय में दोनो ढूँढें दर दर,
अन्दर खोया है जो कैसे मिल पायेगा बाहर।

बुद्धिमान सुत चतुर मित्र प्रिय मधुर सुभाषिणि नारी,
सम्यक धन संगति ज्ञानी जन गुरुवाणी ही तारी।

शोभा बढ़त चाँद से निशि कै दिन कै सूर्य प्रकाशा,
पुत्र होत कुल कै शोभा पर मनु कै ज्ञान पिपासा।

संस्कार बिन चरित न उत्तम कर्म न निर्मल होई,
संस्कार सँग मिलत आत्म बल जात पार नर सोई।

जस जस लोभ बढ़त मानव मन होत मोह विस्तारा,
जस जस क्रोध बढ़त मन भीतर उतनहि पाप पसारा।

वेद रखा हो भले सामने बुद्धिहीन क्या जाने,
दर्पण के समक्ष अंधा क्या निज स्वरूप पहचाने।

ज्ञानी सुत हो भले एक पर कुल दीपक बन जाता,
ज्यों क्यारी में एक सुगन्धित पुष्प सुरभि फैलाता।

तृप्त कबहुँ नहिं होवत मानव धन जीवन तिरिया से,
तृष्णा रहित होत मन जब ही मनुज मुक्त दुनियाँ से।

अपना धर्म न तज तू इससे बड़ा पूण्य नहिं कोई,
सत असत्य अरु बन्ध मोक्ष का ज्ञान सिखावत सोई।

हिय महँ दया प्रगट जबही हिय माहिं अहिंसा जागे,
विद्या प्रगट तबहि जब मन महँ स्वाध्याय प्रिय लागे।

सुखी सोइ नर करइ जो सेवा मात पिता कै भाई,
सदगुरु कृपा परम पद पावत बुधि महँ भेद न आई।

जीवन माहिं अहिंसा रण महँ हिंसा श्रेष्ठ कहावत,
दोनहुँ पावन मिलत दोउ से मुक्ति परम पद पावत।

लिखा भाग्य महँ जो कुछ भाई सोइ मिलत संसारा,
सूर्य ज्योति उल्लू नहिं पावत काकर दोष पसारा।

सावन भादव भरि भरि बरसे भाग्यवान पीता है,
चातक मुख इक बूँद न जाये उलट भाग्य किसका है।

ऋतु बसंत आवत जब फूलत फूल होत हरियाली,
पर करील महँ लगत न पाती कौन भाग्य कै काली।

जब स्वभाव बन जाये तेरा प्रेम सत्य कहलाये,
पर स्वारथ बस उजपे तो मनु प्रेम राग हो जाये।

आपा खोलि वचन जो निकलत वेद वही कहलाता,
सुनि सुनि मनुज प्रफुल्लित प्यारे, हृदय कमल खिल जाता।

भले फटा हो वस्त्र साफ रख भोज्य गर्म भल सावा,
रूप कुरूप भले नारी कै, मृदु स्वभाव मन भावा।

सुर अरु असुर मनुज जग माहीं नाहिं निवारण कोई,
भले एक नक्षत्र मात पितु भिन्न शील गुण होई।

जब तक हिय महँ करुणा नाहीं मन महँ पर उपकारा,
भले मनुज ज्ञानी पंडित पर रहत काम कै मारा।

जीव कर्म बस जनम लेत जग करत कर्म संसारा,
ईश प्रगट करुणा बस भाई करत सदा उपकारा।

पर निन्दा सम पाप न जग में सत सम पूण्य न भाई,
ज्ञान समान ज्योति नहिं साधो काम समान न खाई।

आत्मज्ञान

तन निरोग सम्यक भोजन से सत से मन सुघराई,
हिय निरमल ईश्वर सुमिरन से मुक्ति सोइ नर पाई।

करत करम पर होश न खोअत सो ज्ञानी कहलाये,
लोभ मोह महँ जरत नित्य जो सो न मनुज रह जाये।

धरि संस्कार लेहु पुनि शिक्षा कर पुनि कर्म उदारा,
लगो धर्म महँ पुनि सोचो तुम मानव मुक्ति विचारा।

जैसे टूटत नीद साथ ही मनुज जाग जाता है,
वैसे ही अज्ञान जात जब सत्य ज्ञान आता है।

यह संसार धरमशाला इक यात्री निश दिन आते,
पर इनसे तू मोह न करना बिछुड़ एक दिन जाते।

मधुरी वाणी दानी मनवाँ धीरज धरम उदारा,
पावत संसकार से मानव मिलत न कहीं बजारा।

आत्म शक्ति बलवान कहाये होत न बल आकारा,
अणु क्षण ध्वस्त करत जग दीपक दूर करत अधियारा।

एक विषय जारत पतंग को क्या जलना चाहोगे,
पाँच विषय नित घेरे तुमको कैसे बच पाओगे।

निर्विचार जब मन हो जाये हिय हो भाव विहीना,
तन स्थिर जस मौन वृक्ष हो जानो ध्यान विलीना।

देखो तो अनुराग नेत्र भर बोलो अमृत वानी,
अस चल परिक्रमा हो जाये सुनो प्रेम रस सानी।

मरने का भय तनिक न चन्दर मरना भी आता है,
मरन कला जो जाने मानव कभी न मर पाता है।

बार बार मरता शरीर यह शिशु बालक सुकिशोरा,
पुनि युवान वृद्धा तन होवत पर तुम कोरहि कोरा।

जा हिय होवत अभय आत्मबल ज्ञान शान्ति समरसता,
सत्य अहिंसा त्याग दया धृति सोइ हृदय प्रभु बसता।

गुरु से ज्ञान सत्य साधू से वीरों से कुर्बानी,
सीख नारि से आत्म समर्पण संतन से मृदुबानी।

अहंकार ही बोध कराता तुम्हें तुम्हारे तन का,
अनहंकार अभाष कराता सत्य आत्म जीवन का।

निज स्वभाव नहिं बदलत कबहूँ भले मृत्यु आ जाये,
ढूढत मोती हंस सरोवर बगुल मीन ललचाये।

कर ले देव देवि की पूजा जगती सुख मिल जाई,
पर बिन ईश ध्यान के मानव मुक्ति नहीं मिल पाई।

माया जाल तुम्हारा अपना तू ही फैलाये हो,
क्या कर रहे मनुज तू प्रभु से क्या कह के आये हो।

दोहा- आत्मज्ञान बिन होत नहिं सत असत्य का ज्ञान,
सत असत्य जाने बिना होवत कौन महान।

मन

चन्चल अस्थिर सूक्ष्म मन सुख दुख सहत नित रहत तन,
यह वायु सम बाँधे बँधे नहिं नित्य दौड़त भू गगन,
अभ्यास अरु वैराग्य से जो चाहता है बाँधना,
वह योगि परमानन्द में उसकी कठिन है साधना।

मन ही फसावत सकल इन्द्रिय बुद्धि ममता जाल में,
मन ही उठावत अरु गिरावत रात दिन संसार में,
चाहे अगर मन मनुज जीवन स्वर्गमय क्षण ही करे,
क्षण माहिं पटके नर्क में संसार में यदि फँसि परे।

चहुँदिश असीम अनन्त गिरि कानन समुन्दर लाँघता,
कण से लगाइ समस्त पृथ्वी को पकड़ मन बाँधता।
बलवान प्रमथनशील दुस्कर नित्य जिद मन ही करे,
आये न बस महँ तब तलक मनु योग पथ गहि नहिं धरे।

मन के एक छोर पर योगा एक छोर पर भोगा,
एक छोर पर श्रृजन जगत की इक पर प्रलय वियोगा।

मन है एक समुन्दर जिसका आर पार नहिं भाई,
कोई थाह न पाये इसका अति असीम गहराई।

मन शरीर का एक करण है कर्ता को अति प्यारा,
मन कारण ही मुक्ति मिले मनु मन ही नरक दुआरा।

तन बूढ़ा हो जाये पर मन बूढ़ा कभी न होता,
जन्म मृत्यु के बीच सिंधु महँ नित्य लगावत गोता।

चेतनता का सघन रूप मन जगत दृष्य दिखलाये,
चेतन आत्मा स्वयं रूप में अन्दर दीप जलाये।

मन तो कोरा कागज प्यारे जो चाहे सो लिखना,
इस पर चाहे जहर उड़ेलो चाहे अमृत जितना।

मन नहिं मैला और न उजला नाहीं लाल न काला,
जस स्वभाव संस्कार परिस्थिति तस होवत मन चाला।

मन चलता आगे आगे फिर पीछे बुधि चतुराई,
हो विवेक यदि उसके पीछे दीखे तब प्रभुताई।

मन चंचल रोके न रुकत क्षन कर लो लाख उपाई,
राम नाम पथ मोड़ पियारे एकहि राह सुहाई।

मन आ जाये कभी राष्ट्र पर तुरत जान दे देता,
भा जाये मन तो ईश्वर को कैद हृदय कर लेता।

नित मन बूने ताना बाना देख हँसत इतराई,
पुनि अपने ही बुने जाल में फँसत नरक महँ जाई।

मन आकाश समान असीमित ओर छोर नहिं कोई,
दूइ फसल यहि भीतर उपजे सुख दुख जस जो बोई।

मन में सागर की गहराई नभ सम है ऊँचाई,
दिग समान चौड़ाइ इसमें मानव तैरत जाई।

मन ही मंदिर मन ही मसजिद मन ही है गुरुद्वारा,
मन ही करत शत्रुता जग में मन ही भरत उदारा।

मन माने तो जग है अपना नहिं तो सकल पराया,
रूठ जाय तो जग राई सम रीझै सकल लुटाया।

मन की अति अदभुत गति मानव मन अंधा लाचारा,
बुधि विवेक जब तक सँग नाहीं करत रहत व्याभिचारा।

घर वर हीरा मोती होये मान बड़ाई सारा,
पर मन तृप्त न होवत कबहूँ बिना ईश के यारा।

जीने से मरना अच्छा है यदि मन भजन न भाये,
घर से बेघर अच्छा प्यारे यदि मन चैन न आये।

मन में दृढ़ विश्वास अगर तो हिमगिरि भी झुक जाता,
ईश्वर प्रेम अगर उत्कट हो कोई बाँध न पाता।

ज्यों नौका में छेद होत तो नदी पार नहिं जाये,
त्यों मन महँ हो काम क्रोध तो मनुज न प्रभु पद पाये।

जब तक मन मलीन तब तक नहिं खिलत हृदय फुलवारी,
मन उज्ज्वल सुन्दर निर्मल तो मानव प्रेम पुजारी।

जप तप करि कर मन निर्मल तू पुनि देखो संसारा,
ईश समान सकल जग दीखे लागे परम पियारा।

ज्यों रोगी माने तबही जब रोगमुक्त हो पाये,
मन विकार स्वीकार करे जब निर्विकार हो जाये।

अस्थिर मन महँ नहिं कबहूँ मिलत शान्ति सुख भाई,
स्थिर मन महँ ही पावनता दिव्य ज्योति जल पाई।

नित आसक्त बुद्धि मन माहीं काम लगावत गोता,
अनासक्त मन महँ नहिं कबहूँ काम अंकुरित होता।

चन्चल मन अपने स्वभाव से निश दिन जग में भागे,
बुधि विवेक का काम बाँधि मन हर क्षण हर पल जागे।

मन तो मन है चाहे पीना नवरस जगती भर का,
बुधि विवेक ही पर पहचाने मीठा कड़ुवा चरका।

मन नाहीं तो कुछ भी नाहीं जैसे जड़ बिन पौधा,
बिना हृदय होवत जस प्राणी भगति होत बिन नौधा।

मन ही है जो चेतनता का नित आभाष कराये,
बिन मन सूखे पौधा सम यह जीवन ही मर जाये।

मन तो एक खजाना जिसमें हीरा मोती कंकर,
भोगी ढूढे ममता माया योगी ढूढे शंकर।

दरिया सम बहता मन निशदिन कोई रोक न पाये,
बुधि विवेक का संग मिले तो सिंधु पार हो जाये।

काम सताये निश दिन मन को क्रोध अँधेरा लाये,
राम नाम का दीप जले तो मन मंदिर हो जाये।

मन संकल्प विकल्प करत नित पर परिणाम न जाने,
कल कल करत अबोध नदी सम बहत राह अनजाने।

मन की गति कोई नहिं जाने अति स्वच्छन्द स्वभावा,
पारा सम अति चंचल कबहूँ मानव पकड़ न पावा।

मन दौड़े आकाश कभी तो पहुँच पताल सुहाये,
राई सम लघु होत कभी तो पर्वत सम बन जाये।

जा मन ऊपर बुधि लगाम नहिं अरु विवेक कै पहरा,
सो उत्शृंखल होइ करत मनु घाव बहुत ही गहरा।

मचल जाय मन कभी यार तो छा जाये लरिकाई,
और कभी मन आ जाये तो पा जाये प्रभुताई।

मन ऐसा इक सूक्ष्म यंत्र जो दीखत कबहुँ न भाई,
पर जादूगर सम नित करतब करत न तनिक अघाई।

मन लरिका सम इत उत भागे देख जगत मचलाये,
साँच देख अन्दर को धाये झूठ देख ललचाये।

मन मंत्री फूकत अस मंतर राजा भी घबराये,
ना जाने कब मार मुझे खुद राजा ही बन जाये।

ना देखे मन आगे पीछे देखे साँझ न भोरा,
जब चाहे वह तीन लोक में घूमें ओरा-छोरा।

इष्ट देख हँसता पागल मन पर अनिष्ट लखि रोता,
इष्ट अनिष्ट दोउ महँ आत्मा समता महँ ले गोता।

स्थिरता मन का स्वभाव नहिं चंचल इत उत धाये,
श्रेष्ठ वही जो चंचल मन को नेकी राह लगाये।

चाहे राजमहल हो चाहे खडहर ठेठ पुराना,
मन असंग निर्द्वन्द होय तो हर थल लगे सुहाना।

चटक चाँदनी अरु सुगन्ध से सुरभित हो संसारा,
पर मन महँ अवसाद भरा तो लागे मरघट सारा।

मन हो और कहीं तो तन का सकल बोध खो जाये,
शत्रु, मित्र, सुख, दुख अपना पर एक नजर नहिं आये।

मन ही प्रेम दिवाना होवत मन ही क्रोधी कामी,
मन ही योगी भोगी होवत मन ही होत अकामी।

मन ही मूरख हो जग घूमें मन ही होवत ज्ञानी,
मन होवत अभिमानी मानव मन ही होत अनामी।

मन ही राजा मन ही रानी मन ही सेवक भाई,
मन ही जारत मन ही तारत मन ही है गिरि खाई।

मन बैठे ही बैठे जग का भ्रमण करे दिन राती,
लोक और परलोक कतहुँ नहिं बाधक धरम व जाती।

मन के नीचे इन्द्रिय सोहे ऊपर आत्म विराजे,
दाये बाँये बुधि विवेक की झीनी चादर साजे।

मन चाहे कुछ कुछ हो जाये तो मन क्रोधित भाई,
पर पूरण जब चाह होत मन माहिं राग जग जाई।

मन भागे बाहर जग ओरा पीछे बुद्धि विचारी,
कहत पुकार ईश तो अन्दर बैठा करत गुहारी।

एक काम पूरण नहिं जब तक दूसर आश जगाई,
निश दिन व्याकुल धावत मनवाँ आशा आग जलाई।

मन

तन बल बुद्धि थकत पर कबहूँ थकत न मन बलवाना,
चाहे मनुज वृद्ध हो चाहे बालक होय युवाना।

मन संग हाथ पैर नहिं होवत नाहीं पंख सुहाई,
पर धावत जस किरण सूर्य कै नाप सके को भाई।

राम भगति हिय तबहि विराजे जब मन उलटा नाहीं,
कौन भला मानव भर पाया जल उलटे घट माहीं।

जब तक काम क्रोध मन भीतर असत सत्य दिखलाये,
तब तक प्रेम न भाये मनवाँ सत्य नजर नहिं आये।

जब होवत आसक्त जगत प्रति ईश्वर तनिक न भाता,
अनासक्त की कथनी करनी मन को तनिक न आता।

भगवा वस्त्र पहन का कोई संत भला हो पाता,
जब तक मन उजियाला नाहीं साधू कौन कहाता।

निर्मल कोमल सहज सरल मन है ईश्वर को प्यारा,
उलझत जोइ जगत में ताकर सूख जात रस धारा।

मन अशुद्ध तो शुद्ध काम क्या जग में कर पाओगे,
काजल के घर में रह क्या बच कालिख से पाओगे।

मन अति सूक्ष्म सूक्ष्म दर्शन को निश दिन व्याकुल धाये,
सूक्ष्म सूक्ष्म से सूक्ष्म ईश है क़रि दर्शन सुख पाये।

ज्यों गंगा महँ भला बुरा जो कोई मनुज नहाये,
तन निर्मल त्यों होत प्रेम महँ जब मन डूबत जाये।

मन

मन में दुख तो कंचन कामिनि सुख दे सके न कोई,
सुख में सूखी रोटी लागे मानो अमृत होई।

जैसी सूरत वैसी मूरत काँच दिखाये भाई,
जैसा तेरा मन वैसा ही कर्म सामने आई।

पाप पूण्य दो भाव संग्रहित मन में मनुज तुम्हारे,
एक पकड़ डूबत भव सागर इक से लगत किनारे।

जो मन महँ सो भले दूर हो दूर न होवत सोई,
रहत समीप भले मन नाहीं जानो दूरहि-होई।

कितनहुँ चन्दन लेप लगाओ जात न मन दुर्गन्धा,
जब तक भीतर राम नाम कै खिलत न रजनीगंधा।

सहनशीलता दया नम्रता मन शृंगार कहाये,
पावनता मानवता प्रियता तुमको मनुज बनाये।

मन सेवक प्रिय वफादार पर श्रेष्ठ स्वामि बन बैठा,
प्रकृति संग मिल आत्मा को ही देखो छलि छलि ऐठा।

जहाँ न पहुँचे सूर्य चन्द्र गण पहुँच वहाँ मन जाता,
अनदीखा दीखे अनजाने से जुड़ जाये नाता।

तुम्हें ईश के लिए मिला मन दर दर क्यों भटकाते,
राग द्वेष खाँई में क्यों तुम प्यारे इसे गिराते।

दोहा- मन निर्मल तो दिखत जग ईश समान उदार,
कामी मन में होत नित द्वन्द द्वेष व्याभिचार।

जीवन दर्शन

तू पशु नहिं तुमको मिला है मनुज तन मन ज्ञान ही,
उपकार करना ही तुम्हारा धर्म सत तू मान ही,
आहार निद्रा भोग भय जीवन न दर्शन है सही,
करुणा दया सतप्रेम मानवता जहाँ मानव वही।

जो कर्म सरवस जीव के लगता सदा उपकार में,
जिस कर्म से होती मनुजता की प्रगति संसार में,
वह कर्म ही होता अमर मानव वही पूजित यहाँ,
अस मनुज जिस पथ पर चले वह राह हो दीपित जहाँ।

यह तन नहीं मेरा न मेरे ही लिए ना मैं कभी,
जब होत अस विश्वास श्रद्धा हृदय ज्योति जले तभी,
तब ही मनुज उद्धार सम्भव इस जगत में मान लो,
हम ही पकड़ राखे जगत को वह नहीं अस ठान लो।

तन तो एक बुलबुला प्यारे जाने कब फट जाये,
कर अर्पित शायद फिर मानव जन्म नहीं मिल पाये।

मौत देत नहिं पीड़ा मन में भ्रम की है सब माया,
जो जीना है सीख लिया उसको मरना भी आया।

मत भागो घरबार छोड़ तू कर्म तुम्हें करना है,
बस ईश्वर का ध्यान हृदय में नित्य तुम्हें धरना है।

तेरी करनी आज नहीं तो कल सम्मुख आ जाई,
बीज आज जो बोया साधो वृक्ष होइ कल छाई।

कोई अपना नहीं पराया सबही एक समाना,
सभी मुसाफिर इस सराय के छोड़ एक दिन जाना।

जो नहिं कल था रही न कल अरु आज नाश पथ धारी,
चन्दर कहत सोइ क्षणभंगुर बाकी सत्य मुरारी।

जीवन का क्षण मूल्यवान है व्यर्थ न इसे गवाना,
ना जाने कब जाना होगा छोड़ मुसाफिर खाना।

पल भर का भी पता नहीं है जाने क्या हो जाये,
वर्षों के फेरे में पड़ क्यों जीवन व्यर्थ गवाये।

देख दूर से तू गुलाब को मन प्रसन्न हो भाये,
पास गये तो शायद काँटा तेरे तन चुभ जाये।

ढोर सदृश ममता रस्सी में कब तक बँधे रहोगे,
अमृत के प्याले में कब तक माया विष घोलोगे।

भाग्य भरोसे मत रहना तू भाग्य कर्म से बनता,
कर सुकर्म सौभाग्य बनेगा शास्त्र यही तो कहता।

जीवन हो जब रस विहीन तो जगत व्यर्थ लगता है,
नीरस मनुज कबहुँ जग नाहीं दिव्य कर्म करता है।

ईश्वर और बीच में तेरे केवल माया खाँहीं,
जला ज्ञान दीपक तब दीखे ईश तोर हिय माहीं।

बूँद न भूले सागर को नहिं शिशु माँ से अनजाना,
किरण न भूले सूर्य भला तू क्यों भूले भगवाना।

समय कहाँ जो व्यर्थ गवाते निद्रा आलस माहीं,
हर क्षण मृत्यु बाँह फैलाये क्या तू जानत नाहीं।

मानव तन पा कबहुँ न भूलो प्रभु उपकार उदारा,
ना जाने किस करनी का फल जो वह बना सहारा।

जो बोते तुम वही काटते फिर क्यों तुम विष बोते,
जो देते पाते तुम वह ही इसको ही फल कहते।

ज्यों जल से सैवाल प्रकट पुनि जल को ही ढक रखती,
त्यों ईश्वरसे माया उपजी ईश्वर को ढूँक हँसती।

ज्यों सिवाल पानी बिन प्यारे क्षण मुरझा जाती है,
त्यों ईश्वर बिन माया नाहीं जग में जी पाती है।

जहाँ रहे ईश्वर माया भी वहीं विराजे भाई,
माया से मत दूर कभी हो मिले वहीं प्रभुताई।

माया को ईश्वर का सुन्दर तू वरदान समझना,
माया से ही निश दिन बरसे प्रेम सुधा कै झरना।

हर पग पग पर बाधा आती पर आगे बढ़ना है,
लक्ष्य मिले ना मिले कर्म पथ तुम्हें सदा चलना है।

ज्ञान संतुलित दृष्टि बनाये जीवन को जीने का,
पर अज्ञान मिटाये लक्षण मानव ही होने का।

निश दिन जप तप ध्यान करे तो ईश प्रगट हो जाता,
पर उपकार करे तो मानव भव सागर तरि पाता।

बोलो तो ऐसी वाणी जो अमृत सम मन भाये,
कदम बढ़ाओ तो औरो के लिए राह बन जाये।

सागर में पानी बरसे तो बोल भला का होई,
भरे हुए को और भरे जो ता सम मूर्ख न कोई।

व्यर्थ करो नहिं वर्तमान को करि भविष्य का चिन्तन,
वर्तमान ही होता प्यारे जीवन का सत दर्शन।

जीवन जिसका सरल सुभाषित सोइ प्रेम करता है,
क्या जाने जो लोभ मोह के भँवर माहिं परता है।

निश दिन बैठा तेरे हिय में गाता मधुरी वानी,
किस भ्रम में उलझे प्रियतम छवि देख न सके सुहानी।

अकर्तव्य कर्म मत करना जग में फँस जाओगे,
करि कर्तव्य कर्म तू मानव जगत पार जाओगे।

होड़ लगी सत अरु असत्य में किसको कौन पछारे,
तब असत्य सत रूप धारि के आवत मुख के द्वारे।

नियत कर्म करता जो भाई सोई होत महाना,
अकर्तव्य कर्म जो करता होवत अधम समाना।

सर्प केचुली धर नहिं दौड़त देख सकत नहिं पासा,
त्यों कुसंग को ओढ़ न देखत मानव आत्म प्रकाशा।

पर उपकार सदृश कल्याणी कर्म न उत्तम कोई,
परहित से मनु श्रेष्ठ जगत में दूजा धरम न होई।

होत कर्म तबही अकर्म जब रहे न फल प्रति रागा,
स्वार्थ संग तप यज्ञ दान जप कर्म व्यर्थ अनुरागा।

शास्त्र नियत सतकर्म ध्यान जप सतसंगति जो करता,
सो ही मानव मानवता का पाठ पढ़ा है सकता।

फँसते प्रथम जगत बन्धन में पुनि पीछे पछताते,
सत असत्य में अन्तर मूरख जान क्यों नहीं पाते।

जो आया है वह जायेगा इतना ही तो सच है,
फिर मकड़ी जाले में फँस तू मरता क्यों दर दर है।

जीवन भर तू दौड़ि दौड़ि नित जिसके लिए कमाया,
अन्त घड़ी वह तेरा अपना तेरे काम न आया।

सकल जनम धन मान कमाया याद न ईश्वर आया,
एक साँस क्या दे पायेगी तेरी ममता माया।

घाट घाट पर खूब नहाये दे पितरों को पानी,
पर माया को जान सके नहिं कैसे हो अज्ञानी।

लूट पाट कर दान दिये क्या दानी कहलाओगे,
जब तक मन की मैल धुले ना पार नहिं पाओगे।

मैं मैं में ही बीत गया प्रिय यह जीवन अनमोला,
क्या पाया क्या खोया जग में राख हुआ यह चोला।

खर्च किये कितने साँसों को गिनती नहीं लगाई,
एक एक पैसे को गिनते दे दे राम दुहाई।

सीख रहा चलना तो कोई दौड़ रहा जग माहीं,
चले जा रहे मौत ओर पर जानत कोई नाहीं।

कहने वाला चुप न रहेगा सच कहता जायेगा,
अंधकार के नाश हेतु वह दीपक बन छायेगा।

धन के पीछे दीवाने सब जैसे कामी काया,
इक दिन सरवस लुट जायेगा मूढ़ छोड़ तू माया।

तेरह दिन का ही नाता सब क्यों माया फैलाये,
कर ले राम नाम का सुमिरन काम यही इक आये।

माया का बंधन सारा जग देख सके तू नाहीं,
जाग मुसाफिर साँच भूठ का ज्ञान होइ क्षण माहीं।

आज यहाँ कल वहाँ न जाने परसों कहाँ रहेगा,
जान सका कह कौन जगत में कहवाँ जाइ मरेगा।

पूर्व काल के कर्म तुम्हारे सम्मुख जिस क्षण आते,
सोइ जान दृढ़ नियति तुम्हारी मूरख क्यों घबराते।

कल परसों नरसों जीवन का करना नहीं भरोसा,
सोने की थाली में तेरा आज सुभाग्य परोसा।

शाम हो गई कलरव करते पक्षी लौट पड़े हैं,
पर मानव मद मोह लोभ में निज पथ भूल खड़े हैं।

हो चाहे नृप रंक भिखारी कोई नहीं बचेगा,
दो गज भूमि मिली या नाहीं राखी होइ उड़ेगा।

कर्म कामना को लेकर जो करता वह ही कामी,
धरम तभी जब हर कण कण में दीखे अन्तरयामी।

रोग रहित सौ वर्ष निरन्तर जीवन जीअत जोई,
पर सेवा में रत तन छूटे धन्य कहावत सोई।

मन में कर्तित्वाभिमान नहिं तो आनन्द मिलेगा,
कर्म पूर्ण हो या अपूर्ण मन को नहिं बाँध सकेगा।

ज्यों भूडोल के केन्द्र बिन्दु में हलचल नहिं रहता है,
त्यों मन ऊपर चंचल भीतर शान्त सिन्धु बहता है।

पुत्र पुत्रि से वंश चलत नहिं चलत मात्र संसारा,
चन्दर चलत सुवंश करम से होत अगर उपकारा।

साधन को जीवन तू माने जीवन दिये भुलाई,
अब पछताने से क्या होगा सगरी साँस लुटाई।

मत कर तू अभिमान अभागे काम न आये तोही,
अन्त समय अपनी करनी ही आये काम बटोही।

विमुख न होना कभी कर्म से कर्म हि तोर सहारा,
साहस के सँग बढ़ते रहना इक दिन मिली किनारा।

सच्चा सेवक सदा समर्पित मन से निरमल रहता,
बिना कर्म के एक अन्न भी उदर माहिं नहिं धरता।

अलग अलग है ढंग पियारे निज जीवन जीने का,
सच ही मैं पथ जान गया हूँ ईश्वर रस पीने का।

मत संग्रह कर धन बल माया छूट यहीं जायेगी,
जीवन की यह सकल कमाई काम न कुछ आयेगी।

जो कहता मैं सत्य बोलता वही झूठ कहता है,
वह अपनी कथनी करनी में जहर घोल रखता है।

चाहे लूट रुपैया धर लो चाहे शान्ति हृदय में,
एक करत घनघोर अँधेरा एक ज्योति जीवन में।

अन्त समय में राग द्वेष भय कोई काम न आई,
जीवन भर के पाप कर्म घिर आँखों में छा जाई।

करत कर्म आसक्त होई जो विवस सोइ मरता है,
अनासक्त हो कर्म करत जो सोइ अमर रहता है।

राम नाम से लघु नहिं भाई राम कर्म व्यवहारा,
राम नाम मन ही मन भाये कर्म फले संसारा।

अपनों से सब प्रेम करे पर रिपु से करे न कोई,
जो करता है प्रेम शत्रु से महापुरुष है सोई।

अर्थ धर्म अरु क़ाम मोक्ष ये चार मनुज पुरुषारथ,
अर्थ धर्ममय तबहि भलाई काम मोक्ष के आरथ।

निर्धन का हक छीन बने जो धनी चोर है सोई,
वही अधम पापी व्याभिचारी पतित अपावन होई।

तन से बढ़कर मूल्यवान नहिं होत जगत कुछ चन्दर,
ताको करत अपावन मानव डूबत काल समुन्दर।

घोर स्वार्थ के अंकुर उगते जब परिग्रह मन छाये,
आँखों पर माया का परदा लोभ मोह भर जाये।

बाँट सके ना कोई तेरे कर्म और फल प्यारे,
अपनी करनी अपने आगे आवत बाँह पसारे।

आपन भाग्य आप ही कर में हम ही हैं निर्माता,
अस विचार करि यज्ञ कर्म कर ता सँग रहत विधाता।

स्थिर रहत न कछु संसृति में यह जग की सच्चाई,
जो जाना सो मुक्त जगत में अनजाना बँध जाई।

लादो सोना चाहे मिट्टी गया न फिर आयेगा,
इतना तो तुम जान एक दिन तू भी चल जायेगा।

अन्न भूमि गौ विद्या गोरस अभय सुवर्ण सुकन्या,
आठ दान उत्तम जग प्यारे मनुज होत दे धन्या।

जप तप यज्ञ दान मनु चारो पाँव धर्म कै भाई,
ता बिन धरम अपाहिज होवत गिरत मनुजता खाँई।

तन बलवान होत मेहनत से मन विपत्ति से भाई,
बुधि अभ्यास हृदय श्रद्धा से मनुज सुदृढ़ हो पाई।

होत नहीं उद्विग्न सुज्ञानी कस स्थिति आ जाये,
अज्ञानी लख दुख सुख साधो सिर धुनि धुनि बौराये।

कटुक बोलने वाले मन में फूल खिला क्या सकते,
आग लगाने वाले मानव आग बुझा क्या सकते।

औरों की जो राह खोदता खुद पहले गिरता है,
बुरा चाहने वालों का ही बुरा सदा होता है।

जनम जनम का सत्य कर्म फल मानव तन तू पाया,
बुधि विवेक की ज्योति मिली क्यों मानवता नहिं भाया।

चार दिनों का जीवन सारा क्यों करते बेमानी,
इक दिन चिड़िया उड़ जायेगी रही न एक निशानी।

भोज भोग निद्रा सुख दुख भय महँ पशु मनु सम भाई,
पर सुज्ञान जब जुड़त संग तब जीव मनुज कहलाई।

ऐसा कर्म करो तुम भाई कर्मयोग बन जाये,
जनम जनम के सकल कर्म फल क्षण महँ ही कट जाये।

आज करम जस करता मानव तस फल कल पायेगा,
वर्तमान का बीज फूट तरु भावी बन जायेगा।

भीतर सोया तेरा अपना ढूँढ रहे क्यों बाहर,
गागर के फेरे में पगले भूल गये क्यों सागर।

वीर्य और रज से निर्मित तू बनते हो अभिमानी,
इक दिन जलकर राख बनोगे भूल गये क्यों बानी।

तू अनन्त पर तोर अहम ही तेरा अन्त कराता,
जाति धर्म तेरा कछु नाहीं पर बाँधि तू बौराता।

तू प्रसन्न रहना चाहे तो और ओर मत झाँको,
जग समक्ष अपनी कमजोरी साधो कभी न ढाँको।

लुटा रहे तू सरवस ताकत नश्वरता पाने को,
चौथाई अर्पित करते तू पा जाते कान्हे को।

अहंकार तेरा दुस्मन जो तुमको ही छलता है,
सत्य शीव सुन्दर आत्मा को नित मैला करता है।

तू तन नाहीं कर यकीन मनु आत्मा तबहि दिखाई,
तब सारा दुख दर्द तुम्हारा क्षण में ही मिट जाई।

जैसी सोच मनुज की होती कर्म नित्य करता है,
जैसा कर्म तुम्हारा मानव वैसा फल मिलता है।

सीमा में रह जीवन जीते तुम निस्सीम पियारे,
सागर तजि क्यों बैठे मूरख गड़ही नीर किनारे।

तन को मान स्वरूप स्वयं ही सीमा में बँध जाते,
नित्य पुराण असीम सत्य को जान कभी ना पाते।

लोभी ईर्ष्या माहिं रहत नित मोही आलस माहीं,
अहंकारि मनु होत प्रमादी क्रोधी देखत नाहीं।

मानव तेरी एक जाति है एक धर्म मानवता,
खंड - खंड हो क्यों रहते भरि राग द्वेष हिय ममता।

जीवन के सत लक्ष्य हेतु तुम आगे कदम बढ़ाना,
पर नैतिकता का निर्मल पथ मानव भूल न जाना।

तन धन ही सब कुछ नहिं जग में आत्मा अमर तुम्हारा,
दोनों प्रति समान आस्था नहिं तव तक पथ अंगारा।

कर्म योग पथ जो चलता वह कर्म मुक्त रहता है,
पर सकर्म जो करता मानव कर्म माहिं फँसता है।

करहु संत सेवा तुम निश दिन दान देहु सदगुरु को,
भीख देहु तू दीन भिखारी सकल देहु ईश्वर को।

कुत्ते लड़ते रोटी खातिर भाई लड़ते खेती,
नारी लड़ती गहना खातिर जीवन जाये सेती।

करो कर्म तू स्व विवेक से तबही लक्ष्य मिलेगा,
प्रेम सुधा बरसाओ चन्दर हर हिय कमल खिलेगा।

ब्रह्मज्ञान होते ही जग में कोई गैर न अपना,
मृत्यु याद तो जगत जाल सब लागे माया सपना।

तिनका तिनका जुटा जुटा क्यों अपना घर भरता है,
एक मौत का झटका प्यारे सरवस ले उड़ता है।

आभूषण प्रति मोह लगाई नख शिख लखि बौराई,
मिट्टी तन पर लादि लादि क्यों मिट्टी और चढ़ाई।

कण कण से जो प्यार करे वह राम कहाये भाई,
पर जग से प्रतिकार करे जो वह रावण बन जाई।

आस पास कीचड़ तेरे तो कीचड़ ही पाओगे,
काम क्रोध से व्याकुल कैसे प्रेम राग गाओगे।

इन्द्रिय सुख मिलता न विषय से मन प्रसाद ही मानो,
नश्वरता से मिले मात्र दुख बात गूढ़ पर जानो।

ईश अलग नहिं होवत तुमसे भूल तुम्हारे मन की,
सागर में रह बूँद कहे मैं अति प्यासी हूँ जल की।

अपने को कर्ता जो माने वह कर्तित्वभिमानी,
अहंकारि सो होवत मानव सत्य कबहुं नहिं जानी।

पाप कर्म से मन के भीतर घोर अंधेरा छाये,
पूण्य कर्म अन्दर आत्मा में ईश्वर ज्योति जलाये।

बढ़ता आत्म प्रकाश ज्ञान से पूण्य दान से भाई,
मान बढ़े सम्मान देइ जग मानव धन्य कहाई।

ममता छूटे जब घर छूटे सत्य नहीं है साधो,
घर तो एक सुपावन मंदिर नित्य रहत जहँ माधो।

ममता के बहु रूप जगत में पहला तन प्रति मोहा,
दूजा स्वाभिमान तीजा सुत वर मित कुल प्रति छोहा।

औरों प्रति गड्ढा जो खोदे खुद ही गिर जाता है,
दुख देने वाला संसृति में कभी न सुख पाता है।

मेरी वाणी मेरी राहें कर्म हमारा साँचा,
मेरा धर्म सभी से उत्तम मूढ़ मनुज अस बाँचा।

इन्द्रिय पर मत करो भरोसा साधो बन्धनकारी,
बड़े बड़े विद्वान हुए फँसि काम क्रोध व्याभिचारी।

कुछ पाना हो देना होगा कीमत मेरे प्यारे,
त्याग बिना कुछ मिले नहीं भल ईश्वर संग तुम्हारे।

पर उपकार समान पूण्य नहिं दूजा कर्म जहाँना,
अनहित से है बड़ा न कोई पाप कर्म जग जाना।

शिष्य बनो तो ऐसा तुम पर सदगुरु धन्य मनाये,
बनो नींव का पत्थर जा पर भव्य महल बन जाये।

ऐसा सुख नहिं जग में जिसके पीछे भय दुख नाहीं,
हर दिन बाद रात आती ज्यों धूप बाद है छाहीं।

धन दौलत जीवन माध्यम है लक्ष्य नहीं है भाई,
जिसने लक्ष्य बनाया उसकी जग में हुई हँसाई।

कल पर टालत काम जोइ सो मन इन्द्रिय कै दासा,
सागर में रह मानव मानो रह जाता है प्यासा।

औरो के कहने पर क्या तुम घर में आग लगाते,
मन के बहकावे में क्यों फिर आत्मा स्वयं जलाते।

जो आलस में रहता दुर्मति दुर्गति ताकर होई,
जीवन अधम कहावत भाई जात नरक महँ सोई।

भूल तुम्हारी इतनी मानव स्व को ना पहचाने,
तुच्छ जगत के पीछे पगले दौड़ रहे दीवाने।

साधो राग द्वेष ममता से तेरा नहिं कछु नाता,
तू तन धन परिवार सजाये भूल गये क्यों दाता।

थोथी बोली बोलो नाहीं बोल सत्य शिव जानी,
व्यर्थ गवाओ नाहीं प्यारे मिलल तौल कर बानी।

दोष लगाने से पहले तुम अपने भीतर झाँको,
आत्म तुष्टि हो जाये तबही और ओर तुम ताको।

कटु विचार आवत ही मन में बुद्धि नाश हो जाती,
बुद्धि भ्रष्ट होवत ही मानव कर्म होत आघाती।

आते जाते तुमको देखा रो रो निज दुख गाते,
पर सुनने वाला भीतर से दीखा हँसते खाते।

हाँनि लाभ दो पहलू जग में जो जाना सो ज्ञानी,
होता भाई कहीं मरुस्थल और कहीं पर पानी।

भोग भोगना ही होगा जो कर्म जाल फैलाये,
मृत्यु भले आ जाय कर्मफल मिटे न कबहुँ मिटाये।

हो जहाज यदि भँवर बीच में बोलो कौन बचेगा,
कर्म जाल में फँसा किनारे किस विधि मनुज लगेगा।

तुम पर है अधिकार ईश का परम पिता वह तेरा,
कर लो दृढ़ विश्वास तुम्हारा अंतिम है यह फेरा।

स्वार्थ युक्त अनगिन विचार तुम सोच स्वयं उलझाये,
निस्वारथ विचार ही मानव जीवन मंत्र कहाये।

अपना कर्म स्वधर्म कहाये छोड़ो कबहुँ न भाई,
छोड़ि चलत मानव स्वकर्म जो सोइ अधर्म कहाई।

मैं है तो मेरा होगा ही मेरे से ही ममता,
ममता से ही जगत जाल तहँ पचि पचि मानव मरता।

सत समान माँ ज्ञान पिता सम जहाँ धर्म सम भ्राता,
करुणा पत्नी पुत्र दया सम रहत तहाँ सुखदाता।

दाँत माहिं विष होत सर्प के मक्खी सिर पर धारे,
पूँछ माहिं विष बिच्छू राखे पर मानव तन सारे।

बालक बर्रय स्वान मूर्ख नर सिंह साँप नृप साता,
सोते नाहिं जगावहु इनको निज सर दुख घहराता।

नाशवान तन संपत्ति चंचल नश्वर सब संसारा,
त्यागि करो कर्तव्य कर्म तू जीवन लक्ष्य तुम्हारा।

भृत्य पथिक विद्यार्थी भूखा द्वारपाल भंडारी,
सोवत देखि जगावहु इनको इनकर कर्म विचारी।

दूषित भोजन रोग खजाना सम्यक सदा दवाई,
दूध घीव बल बुद्धि बढ़ाये मांस क्रोध उपजाई।

गज अंकुश से अश्व चबुक से डंडे से पशु डरता,
त्यों ज्ञानी से अज्ञानी मनु नित ही काँपत रहता।

मृदुभाषी का शत्रु न कोई ज्ञानी का न विरोधी,
पर उपकारी आनन्दित नित योगी विचरत बोधी।

जहाँ न रिस्ते नाते अपने होते वहीं मरुस्थल,
जत तप ध्यान योग वन्दन जहँ तहाँ मनुज मन निश्छल।

मान और अपमान त्याग तू जीवन जीओ भाई,
हो निर्द्वन्द अकाम अनामी तबही सफल कहाई।

जीवन दर्शन

मनुज सकल चतुराई खोवत जब सवाइ मिल जाये,
प्रात काल चन्दा खोवत छवि जब रवि नभ घर आये।

बोलो नित मधुरी वानी तू मिटा मान अपमाना,
तबहि जगत आपन तू जग का बन के फूल खिलाना।

गई जवानी झुकल कमर ग्रिव मानहु खोजत अँखिया,
तेरे देखत ना जाने कब कहाँ गयल तन थतिया।

बिन विचार नहिं दोषारोपण कर नहिं करम प्रकारा,
बिन सुनि देखे सच नहिं मानहु माया जगत पिटारा।

बड़ा न होवत कछु सेवा से भोजन सम नहिं दाना,
द्वन्द समान विघ्न नहिं जीवन वेद समान न ज्ञाना।

मन माफिक कछु होत न पगले सरवस ईश अधीना,
जस करनी तस फल नर पावत पड़त नाहिं विधि जीना।

गाय झुंड में बछड़ा देखे ज्यों अपनी जननी को,
त्यों माया संसृति में प्यारे देखो निज करनी को।

पाप पुण्य दो ही फल जीवन वृक्ष तले लगते हैं,
एक तोड़ते दुर्जन दूसर सज्जन नर वरते हैं।

शुद्ध होत हर संस्कार से मन शरीर अरु वाणी,
तस उपकार कर्म से होवत मुक्त सकल जग प्राणी।

पर दुख समझ सके नहिं राजा वेश्या चोर भिखारी,
निज दुख देखत कबहूँ नाहीं ऋषि मुनि संत पुजारी।

मात पिता वह जो सुपुत्र को सब संस्कार सिखाये,
संस्कार बिन बालक कोई मानव नहिं बन पाये।

भाई सम नहिं गैर जगत में भाई सम नहिं अपना,
हिंसा सम नहिं पाप अहिंसा सम न पूण्य कछु तप ना।

आशा धरि माँगत भिक्षा जो सो नर होत भिखारी,
निस्वारथ माँगत घर घर जो वही होत ब्रह्मचारी।

निर्धनता से बड़ा न कोई होत रोग जग माहीं,
नौकर मित्र हितैषी अपना छोड़ चले परछाहीं।

क्षमा तपस्वी की शोभा है नारि पतीव्रत धरमा,
हंस सरोवर कै शोभा है मानव शोभा करमा।

समय बाँम तो धैर्य रखो तुम समय पलट पुनि आई,
एक समान समय नहिं साधो सुख दुख आवत जाई।

समय बड़ा बलवान जन्म अरु मृत्यु उसी के हाथा,
पंचभूत पर करत सवारी प्रलय प्रभव के साथा।

जस करतूत सुभाग्य बनत तस भोगत नर जग माहीं,
कभी मोह माया में फँसता कभी मुक्ति कै छाहीं।

मंत्री करनी भोगत जनता पुत्र पिता कै भाई,
गुरु कै शिष्य पती कै पत्नी अस जग रीति बनाई।

जग को जीतो कर्म भाव से भक्ति भाव से प्रभु को,
दंड भाव से जीतो दुस्मन सेवा से सदगुरु को।

लोभी धन से होत तृप्त अरु मूरख फुसलानी से,
ज्ञानी सदा ज्ञान से प्रफुलित कृषक खेत पानी से।

बिन अभ्यास निबल विद्या बुधि बिना योग तन जर्जर,
बिन आदत तीखा जो खाये ता को होत भकन्दर।

बिन प्रकाश नहिं दिखत असत सत लाठी बिन नहिं थाहा,
व्यर्थ बिना विद्या के जीवन श्रेष्ठ सोच बिन दाहा।

पशु सम क्रोध काम पापिन सम मद अंधा निर्मोही,
वैतरणी सम लोभ मोह जग जाल फसावत तोही।

टारे टरत करम गति नाहीं देख शंख गति भाई,
पिता सिंधु भगनी लक्ष्मी पर करम प्रत्यक्ष दिखाई।

कंचन से तन शोभा नाहीं होवत सत्य करम से,
आभूषण कर शोभा नाहीं होवत दान धरम से।

बालकपन माँ की गोदी में सदगुरु अंक जवानी,
वृद्धापन परमात्म गोद में जीवन यही कहानी।

ज्यों पलाश बिन गंध अशोभित नारी वस्त्र विहीना,
त्यों नर भल सुन्दर कुलीन पर ज्ञान बिना हो दीना।

समय देखकर चल रे चन्दर समय होत बलवाना,
जो ठुकराया वही गिरा जो अंक लगाया जाना।

समय परिस्थिति व्यक्ति वस्तु थल सदा देख कर चलना,
जो देखा पहुँचा ना देखा पड़ा उसे कर मलना।

छोट बड़ा कोई सुकर्म हो करो पूर्ण मन लाई,
मिले ना मिले मनुज लाभ पर कर्मयोग कहलाई।

बुरा समय लखि सजग रहे जो सोई चतुर कहाये,
जो निद्रा आलस प्रमाद में बधल नष्ट हो जाये।

जस राजा तस प्रजा होत है जस संगति व्यवहारा,
जस व्यवहार होत तस भाई संस्कार आधारा।

कोई कहता झूठ बुरा है कोई अच्छा भाई,
मैं कहता हूँ झूठ झूठ है सत सर्वत्र सुहाई।

संतोषी ब्राह्मण होवत अरु असंतोषी राजा,
सावधान होवत व्यापारी रहत गृहस्थ स्वकाजा।

कटु वाणी से तीत न कोई विष होवत संसारा,
विनय वचन सम अमृत नाहीं दीखत जगत पियारा।

दान देत सो हाथ कहाये ले वह होत कटोरा,
परहित त्याग विकर्म करत जो होवत सोइ अघोरा।

बिन सोचे तुम करम न करना बिन देखे नहिं चलना,
बिनाः लक्ष्य पाये नहिं रुकना आगे बढ़ते रहना।

स्वाद वाद से रसना मैली काम क्रोध से नैना,
स्वार्थ भाव से नीयत मैली राग द्वेष से चैना।

नारि बिना घर सूना लागे सुत बिन जीवन सारा,
ज्ञान बिना मानवता सूनी प्रेम बिना संसारा।

कौन जानता मृत्यु कहाँ सिर ऊपर कब घहराई,
हर क्षण का उपयोग करो तुम जाने कब ले जाई।

धनवानों का हर कोई मित बन जाता जग माहीं,
पर निर्धन का अपना पुत्तर संग निभावत नाहीं।

जहाँ भेद तहँ दुख पीड़ा नित अपना पाँव पसारे,
जहाँ अभेद बुद्धि तहुँ होवत सत शिव सुन्दर प्यारे।

सदा लक्ष्य हो ऊँचाई की भले मिले या नाहीं,
हर प्रयत्न में ही होवत मनु पूर्ण पूण्य परछाहीं।

माया परदा परल आँख पर चारहु ओर अधेरा,
दीखत असत सत्य सम भाई लागत शाम सबेरा।

माया की गति बड़ी निराली जान न पाया कोई,
जो जाना पागल कहलाया अनजाना मनु रोई।

समय संग चलना जीवन है पकड़ बैठ नहिं जाना,
रुका जोइ सो पहुँच न पाया पड़ा उसे पछताना।

कल की बात कहत युग बीता पर कल कबहुँ न आया,
वर्तमान ही सदा उपस्थित उसकी ही सब माया।

जहाँ भेद बुधि वहीं कलह है राग द्वेष तहँ छाया,
जग बन्धन आरम्भ वहीं से यही होत जग माया।

चले गये सब संगी साथी तुम भी चल जाओगे,
कर्म अकर्म विकर्म एक भी छोड़ नहीं पाओगे।

जस स्वभाव तस कर्म करत मनु छोड़त नहिं संस्कारा,
दुष्ट दुष्टता कबहुँ न छोड़े तजत न साधु उदारा।

समय परिस्थिति देख न चलता सो मानव अज्ञानी,
बिन देखे नृप रावण धाया पाया कुल कै हानी।

भरा मनुज हिय गम से हँसना क्या उसको भायेगा,
जो जीवन से हार गया क्या विजय कभी पायेगा।

सीख गधे से उदासीनता लोमड़ि से चतुराई,
अजगर से धीरज सीखो तुम कौवे से चपलाई।

अनासक्त मन बुद्धि रहत जब होवत भय दुख नाहीं,
पर आसक्त मनुज का जीवन होवत बंधन माहीं।

परिग्रह जीवन होत न उत्तम दुख भय विपति बढ़ाये,
अपरिग्रह तो दया प्रेम सत करुणा ज्योति जलाये।

सत्य छुपाये छुपत न कबहूँ लाख यतन कर भाई,
कभी ना कभी प्रगट होइ जग के समक्ष आ जाई।

कैसा भी हो पास पड़ोसी करो प्रेम व्यवहारा,
हर सुख दुख में सबसे पहले पहुँचे वही दुआरा।

सज्जन से मिल जुल तू रहना दुर्जन दूरि बनाई,
सज्जन की गाली भल लागे दुर्जन प्रेम पिराई।

शिक्षा से सदबुद्धि मिलेगी ज्ञान विज्ञान प्रकाशा,
यज्ञ कर्म उत्पाद बढ़ेगा होइ विघ्न कै नाशा।

जीवन दर्शन

जो सबसे अपने उनसे नित मन से दूर रहो तुम,
लोभ मोह से मुक्ति मिलेगी मानव नाहिं बधो तुम।

जाहि कर्म महँ भय लागे सो कर्म न कबहूँ करना,
कितनी भी सम्पत्ति सुयश हो कदम न आगे धरना।

करते जा सत्कर्म मनुज तू कबहुँ व्यर्थ नहीं जाई,
जो चलता हैं वही पहुँचता वही परम पद पाई।

यह तन नाहीं खेल खिलौना होत नहीं मधुशाला,
यह तो ईश्वर का मंदिर प्रिय सत शिव सुन्दर शाला।

जब तक खोज ईश की भाई तब तक जीवन जानो,
खोज नहिं फिर जीवन कैसा मृत्यु इसे ही मानो।

बीत जाय ना सरवस जीवन झूठी शान दिखाते,
कर कर्तव्य कर्म तू मानव नव पथ कदम बढ़ाते।

निष्क्रिय जीवन होत न पावन बहना ही पावनता,
ज्यों सरिता जल निर्मल उज्ज्वल गड़ही नीर महकता।

दुख जीवन की होत कसौटी दुख से मत घबराना,
दुख में ही प्रभु याद रहत फल देत शुभाशुभ नाना।

दोहा- जीवन जीने की कला जीवन दर्शन होत,
जो जाने मानव वही न जाने पशु गोत।

समतायोग

जहँ सब चराचर लगे अपना पर हृदय ममता नहीं,
संयम समर्पण प्रेम करुणा दया जहँ समता वहीं,
आसक्ति का कर त्याग जो हर द्वन्द से निर्मुक्त है,
सुख दुख व मानपमान में सम सोइ समता युक्त है।

छा जाय समता योग हिय निज रंग में जगती रँगे,
अपना पराया भूल हर प्रति प्रेम अंकुर नित उगे,
तब भेद बुधि रह जाय नहिं उपकार-पर हिय महँ जगे,
निन्दा व स्तुति शिला कंचन राग द्वेषी सम लगे।

रह जाय नाहीं वाद एकहु भेद सब मिट जात है,
तहँ शूद्र ब्राह्मण वैश्य क्षत्रिय एक मानव जाति है,
ऊँचा व नीचा धनी निर्धन एक सम जब दीखही,
तब चहुँ तरफ सुख शान्ति समता त्याग नित बरसइ मही।

सकल जगत को मान ईश का एक सुपावन रचना,
जग लागे तबही ईश्वर सम हो जाये सब अपना।

ममता जगती माहि फँसाती समता मुक्त कराती,
एक गुलामी जीवन भर की एक स्वराज दिलाती।

सुख देते अपने सुख खातिर यह ही तो ममता है,
निस्वारथ सुख देना साधो यही योग समता है।

पाँच बरस का बालक चाहे साठ बरस का बूढ़ा,
सम समझे ज्ञानी कहलाये भेद करे सो मूढ़ा।

मन रूप वर्तन मलीन है काम क्रोध ममता से,
प्रेम नीर महँ सींच अमल कर हे मानव समता से।

जीवन जीना बहुत सरल मनु तज मन से चतुराई,
कर निश्छल निर्मल समत्व मन जग आपन हो जाई।

ईश भगत को अपन पराया भेद नजर नहिं आता,
समता में ही जीता समता की सुगंध फैलाता।

साधू मस्त भजन कीर्तन में निश दिन मौज मनाये,
जगती का हर द्वार उसे वैकुण्ठ लोक सम भाये।

जिसका हक उसको लौटा दो करो न बन्द तिजोरी,
माँग रहा जो भीख उसी की किये मनुज तुम चोरी।

औषधि एक क्रोध का उत्तम सदा होश में रहना,
और कामना पूर्ण होय या हो अपूर्ण सम सहना।

सत्ता सम्पति और विद्वता पाइ को न बौराया,
पर समता में रहत जोइ सो महापुरुष कहलाया।

ममता रोग बढ़े जब मन में समता औषधि पीना,
हो निर्द्वन्द विमल निर्द्वेषी राग रहित तुम जीना।

एक झलक ही काफी हिय में आत्म ज्योति की भाई,
अपन पराया भेद मिटे जग ईश समान दिखाई।

बाहर भीतर एक चेतना अन्तर मत करना तू,
जीवन का बस एक लक्ष्य हो समता में रहना तू।

जैसे पत्थर पर पानी की घात नहीं चल पाये,
वैसे समता युक्त बुद्धि पर अहंकार नहिं छाये।

दूर रहो तुम काम क्रोध से भर हिय समता सागर,
समता से ही कटता सारा पाप ताप दुख गागर।

मृत्यु बाद बस कर्म रहेगा मत कर माया ममता,
प्रेम दया भर ले तू चन्दर छा जाये हिय समता।

स्वस्थ सुवासित सुखकर जीवन मानव लक्ष्य तुम्हारा,
एक मंत्र समता अपनाओ मिल जाये जग सारा।

मैं होगा तो ममता होगी मैं नाहीं तहँ समता,
जहँ समता तहँ रहत सुभाषित मनुज हृदय मानवता।

ममता के बन्धन की सीमा मन बुधि तक होती है,
सीमा से हो पार बढ़ो तुम जहँ समता बसती है।

मानव तुम हो मानव वह भी भेद नहीं इन्साना,
जान गया सो ज्ञानी ना जाना सो मूढ़ महाना।

जड़ चेतन में भेद न दीखे जब समता हिय छाये,
मिट जाये क्षन राग द्वेष पर आपन भेद न भाये।

जा को नारि मात सम दीखे सम्पति धूल समाना,
सब प्राणी अपने सम लागे पण्डित सोइ महाना।

कितना ही कुरुप हो मानव समता जब हिय आई,
दृग महँ ज्योति विवेक बुद्धि मन सुन्दरता छा जाई।

गौ सम नहिं जग दूजा पावन इसकी रक्षा करना,
यह औषधि भंडार मनुज तू माँ समान हिय धरना।

तत्व ज्ञान जब होवत चन्दर जग ईश्वर सम लागे,
अपन पराया इक सम दीखे हिय महँ समता जागे।

काम क्रोध बाधा है वरना ज्यातिर्वान तुम्हीं हो,
हृदय माहिं समता नहिं वरना चिदानन्द सबही हो।

काम क्रोध से बड़ा न जग में दुस्मन तेरा कोई,
मित्र नहीं समता सम प्यारे पाइ धन्य सो होई।

बलशाली वैरी प्रति विनयी छोटन प्रति कोमलता,
सम प्रति करहु विशुद्ध वार्ता धरि हिय महँ मनु समता।

बड़ा वही सीमा का कबहूँ नाहिं उलंघन करता,
नदियाँ सदा उफनती सागर नित सीमा में रहता।

उदासीन ही मानव जग में रहता परम उदारा,
कामी क्रोधी लोभी मोही पचि पचि मरत विचारा।

हँसते ही आगे बढ़ना तू भले मुसीबत आये,
पाँव न पीछे रखना भल गिरि खाईं पथ पर छाये।

मन को कर लो खाली प्यारे मत भर जग जंजाला,
तभी भरेगा अमिय प्रेम रस तेरे हृदय पियाला।

बिना तजे अभिमान न कोई कहलाता मनु ज्ञानी,
हो चाहे वह पंडित मुल्ला हो चाहे विज्ञानी।

भर लो अपना हृदय प्रेम से जो न कभी घट पाये,
जितना बाँटोगे उतना ही निश दिन बढ़ता जाये।

बिना वेष के मिले न भिक्षा तुमही तो कहते हो,
बिना भक्ति के ईश मिलेगा क्यों यकीन करते हो।

जा हिय ईश प्रेम नहिं भाई निरस सोइ संसारा,
जीवन लक्ष्य अधूरा ताकर होवत जनम दुबारा।

जो औरो पर हँसता भाई बाद वही रोता है,
पर अपने पर हँसने वाला हँसता ही रहता है।

नदी बहे तट बीच तभी तक भला लगे संसारा,
पर जब तोड़ किनारा बहती करती नाश अपारा।

भर ले प्रेम हृदय में मानव जनम सफल हो जाई,
ईश्वर का यह नेक गुलिस्तां कबहुं नाहिं मुरझाई।

नश्वरता में प्रियता तेरी सुख कैसे पाओगे,
विष खा कर तुम गीत अमरता का कैसे गाओगे।

शाश्वत से कर प्रीति उसी में सच्चा सुख मिलता है,
नश्वर सुख दुखमय क्षणभंगुर संग न नित रहता है।

प्रथम करो कुल से सुप्रेम पुनि ग्राम जिला पुर देशा,
पुनि वसुधैवकुटुम्ब भाव भरि कर हर जीव अशेषा।

तजि अभिमान कर्म को केवल धर्म मान जो करता,
होत कर्मयोगी मानव सो दीप होइ नित जलता।

थक जायेगा जब तन तेरा तब क्या कर पाओगे,
कर लो जप तप ईश्वर सुमिरन इक दिन मर जाओगे।

पर उपकार लोक सेवा ही सच्चा धर्म कहाये,
स्वार्थ भरा हर कर्म तुम्हारा जग अधर्म हो जाये।

ज्ञानवान अपने वाणी पर नित्य नियंत्रण रखता,
झूठ साँच उसके बस नाहीं ईश कहे सो कहता।

विषय इन्द्रियाँ तुम्हें फँसाती मूढ़ बनाती भाई,
सदा सजग रहना इनसे तू यही तोर हरजाई।

मन में सच्ची श्रद्धा होये प्रबल होय जिज्ञासा,
तब मानव मन उपजे भगती जब उत्कट विश्वासा।

धन्य वही माया में रह जो भजते निश दिन रामा,
पर हित कर्म प्रेम हिय माहीं होत भाव निष्कामा।

सेवा कर निस्वार्थ भाव से देख समान जहाँना,
तबहि शान्ति आनन्द हृदय में लगे जीव भगवाना।

काम क्रोध भय राग द्वेष सब पापों के जड़ होते,
इनमें ही फँस बार बार मनु जन्म मृत्यु पर रोते।

राग द्वेष का भाव प्रगट मन परिग्रह से ही भाई,
तुरत त्याग परिग्रह नाहीं तो जीवन विष बन जाई।

अपरिग्रह तप त्याग धर्म की पहली सीढ़ी होती,
बिना त्याग मानव हिय भीतर जलत न अन्तर ज्योती।

क्रोध माहिं जागत सो साधू संत फकीर कहाये,
जो जानत अनमोल जिन्दगी सो न कबहुँ सो पाये।

क्रोधी पर तू क्रोध न करना वरना क्रोध बढ़ेगा,
शीतल जल सा एक मौन ही मन को शान्त करेगा।

भरा हुआ हो मन में विष तो शान्ति नहीं महलों में,
मन में अमृत हो तो सरवस सुख है खंडहरों में।

सुख आये परसाद समझ तू जग में बाँटत रहना,
दुख आये चरणामृत जानो पीकर मस्त विचरना।

दिव्य ज्योति जा हिय जल जाये देव वही कहलाये,
सकल जीव से प्रेम करे सो मनुज ईश हो जाये।

औरो को बरबाद करे जो क्या आबाद रहेगा,
दुख देने वाले को बोलो क्या सुख शान्ति मिलेगा।

सुख दुख आता जाता भाई रोक सके ना कोई,
पर मानव वह जो सुख दुख में होश कभी ना खोई।

बुधि विवेक जागृत जाकर सो होत मनुज बड़भागी,
त्याग चला आसक्ति परिग्रह सोइ होत अनुरागी।

सोलह है संस्कार मनुज के जीवन में धरि लेना,
होत पुष्ट तबही तन मन बुधि मिलत शान्ति सुख चैना।

जनम जनम की हड्डी से मनु भर सकता सागर है,
पर बिन प्रेम नहीं भरता अस गहरा हिय गागर है।

जहाँ देख कर सत प्रतीत हो मिले शान्ति सुख जहवाँ,
वही तीर्थ होवत जग प्यारे मिलत ईश नित तहवाँ।

चिन्ता से हो मुक्त करो तुम चिन्तन शान्ति मिलेगी,
चिन्तन से ही आत्म ज्ञान की पावन ज्योति जलेगी।

चाह रहे सुख शान्ति अगर तो धर्म संग तुम रहना,
करुणा दया प्रेम अमृत रस वरण सदा ही करना।

है न वासना में गिरने की सीमा कोई साधो,
चंचल मन की आतुरता को आज अभी तुम बाँधो।

भरा स्वार्थ से तेरा तन मन प्रेम कहाँ से दोगे,
हिय भीतर नहिं शान्ति कहाँ से नींद चैन की लोगे।

जनम जनम का पूण्य मनुज तन मिला सुभाग्य तुम्हारा,
क्यों माया में व्यर्थ फँसा तू फिरता मारा मारा।

सुनना सीख लिया जो मानव शान्ति उसे मिलती है,
कहाँ सुनाने वालों के सँग शान्ति कभी रहती है।

मैं को जिसने त्यागा साधो स्व को वह पाया है,
जो स्व को पहचाना चन्दर उसको जग माया है।

बिना ध्यान के ज्ञान न भाई बिना त्याग नहिं ध्याना,
बिना कर्मफल त्याग असम्भव जीवन में सुख पाना।

पाप छुपाने से बढ़ता है कहने से कम होता,
जो जाने सो शान्ति राह में नित्य लगावत गोता।

तुम आत्मा हो देह नहीं मनु सत इतना बस जानो,
संसृति सुख दुख त्याग सुभागे सत्य रूप पहचानो।

जा मन होत मृत्यु भय नाहीं आनन्दित नर सोई,
प्रभु ही मेरा मैं ही प्रभु का जाने अभय सो होई।

स्नेह वचन तू बोल पियारे दुस्मन दोस्त बनेंगे,
अपने और पराये सब ही तुमको अंक भरेंगे।

समता नमता अरु उदारता मानवता हो जहवाँ।
नित्य शान्ति आनन्द वहीं मन मारत गोता तहवाँ।

धरती से यदि जुड़ा वृक्ष जड़ तो ही फूल खिलेगा,
ईश प्रेम के बिना हृदय में नाहीं ज्योति जलेगा।

जहाँ राम अल्ला ईसा पर गरदन कटि गिरता है,
वहाँ धर्म नहिं होता प्यारे प्रेम सूख जाता है।

मन्दिर वह जहँ जाते ही प्रिय भाव प्रगट हो जाये,
पत्थर ईंटे का जुड़ाव तो मानव घर कहलाये।

राग प्रेम में भेद एक ही इक लेता इक देता,
एक स्वार्थ के परवस होता इक निस्वारथ खेता।

ज्यों हर बीज माहिं सम्भावित एक वृक्ष की भाई,
त्यो हर मनुज माहिं ईश्वर से मिलन आश है छाई।

मन मारग जो मोड़ि सके वह ही मानव कहलाये,
बिन संयम मानव मन भीतर त्याग भाव नहिं आये।

पारस रूप मिला जीवन तन मूल्यवान हर साँसा,
अस तुम जानि राम रस पीओ भरि श्रद्धा विश्वासा।

कैसा भी हो मोह तुम्हारा दुख लेकर आयेगा,
जगती के हर सुख के पीछे दुख ही तू पायेगा।

जो स्वरूप को भूला उसको जनम मरन दुख भारी,
ताके भाग्य शान्ति सुख नाहीं होत सोइ व्यभिचारी।

यदि जीना है मनुज शान्ति से सीख कला कुछ भाई,
मूर्ति चित्र संगीत गीत हो जीव धन्य हो जाई।

शान्ति स्वरूप स्वभाव तुम्हारा तनिक न भ्रम इन माहीं,
लोभ मोह भय के ही कारण मानव जानत नाहीं।

ईश्वर मदद उसी की करता साधो इस जगती में,
जो हिम्मत कर चल देता सब त्याग आत्म तृप्ती में।

क्रोध उठे तो ध्यान स्वयं के साँसो का कर लेना,
डूब जाय आत्मा जिसमें अस प्रेम हृदय भर लेना।

साधू व्यर्थ न बोले कबहूँ क्रोधी नित बौराये,
इक हिय भीतर शान्ति विराजे इक अशान्ति हिय छाये।

हे मानव भर प्रेम हृदय में यही मनुजता होती,
सच जानो तेरे हिय भीतर होत ईश की ज्योती।

ऐसा मित्र बनाओ नाहीं जा महँ त्याग न लज्जा,
वह मकान तज जा कर होवत निर्बल भीत न छज्जा।

है धनवान वही जिसके मन नाहीं द्वन्द न दावा,
वही श्रेष्ठ होता है जिसमें होत त्याग कै भावा।

बालक तेरा मेरा नाहीं ईश प्रसाद जहाँना,
करत जोइ सेवा निस्वारथ होवत सोइ महाना।

जा हिय करुणा दया प्रेम नित सोइ कहावत मानव,
भले न भगवा वस्त्र भस्म पर मानवता तहँ जानव।

काम क्रोध मद मोह लोभ भय मनुज रोग बड़भारी,
ता से मुक्ति कर्मफल त्यागहु तबही मिली मुरारी।

जब हताश हो नर पौरुष से जात ईश के शरना,
वहीं मिलत सुख शान्ति वहीं पर मिलत ईश कै चरना।

ज्ञानी होत सुपूजित जग में राजा निज रजधानी,
मृदुभाषी सबको प्रिय लागे दाहत पर कटु बानी।

प्रेम रंग में रँगा भ्रमर कबहूँ न कमल दल छेदे,
पंखुड़ियों में भले कैद हो पर न प्रेम को भेदे।

जब तक जग में रहो प्रेम से जाना इक दिन होई,
आज तलक उस अंत घड़ी को जान सका नहिं कोई,

मोह माहिं मानव फँसि फँसि के बन जाता हत्यारा,
मोह त्याग तब अपना लागे सारा जगत पियारा।

खंड खंड हो चन्दन लकड़ी पर सुगन्ध नहिं छोड़े,
साधु भले मर जाय साधुता से न कबहुं मुख मोड़े।

भोगी सुख पावत संग्रह में योगी त्याग सुहाये,
तृप्ति न पाये भोगी कबहूँ जोगी मौज उड़ाये।

मत जीओ अभिमान संग तू तिल तिल जीवन जलता,
एक बार मद त्याग मूढ़ तू बोझ लिये क्यों चलता।

सुख से जीना हो तो प्यारे करो त्याग अभिलाषा,
जग को अपनाना चाहो तो बोलो अमृत भाषा।

कहाँ खो गई मानवता जो कटुता हृदय समाई,
यज्ञ दान तप छोड़ स्वार्थ में अधम राह अपनाई।

निज स्वारथ में जीवन जीता सोइ नरक महँ जाता,
पर निस्वारथ कर्म करत जो अमृत फल सो पाता।

झुलस रही मानवता प्यारे नैतिकता पथराई,
आज हे मनुज सारे जग से करुणा प्रेम पराई।

योग रहित नर बंधन माहीं नित्य नरक पथ जाता,
पर योगी हर बँधे हुए को नित ही मुक्त कराता।

दोहा- जब समता मन ऊपजे कर्म योग बन जाय,
होत मनुज ईश्वर सम जगत ज्योति कहलाय।

मानवता

तन मन जहाँ उपकार में मानव निरन्तर नित लगे,
सतकार सेवा भाव परमारथ हृदय महँ जब जगे,
जहँ जल रही हो दीप सम सदभावना समता मही,
कल्याण करुणा प्रेम जहँ नित होत मानवता वही।

जहँ सहज सरल सरस सुचिन्तन होत सुमिरन्न मनुजता,
जहँ अमल निर्मल स्वच्छ कोमल हृदय महँ हो मधुरता,
जहँ सत अहिंसा त्याग तप जप धर्म जीवन राह हो,
जहँ जीव ऊपर प्राण न्योछावर सदा अस चाह हो।

बन जाय पर पीड़ा जहाँ अपना वही हिय मृदुलता,
हर जीव में जब स्व दिखे स्व में अखिल यह संसृता,
समरूप दीखे ईश जहँ परिपूर्ण इस संसार में,
मानव वही है मनुजता डूबा जहाँ नित प्यार में।

सत्य अहिंसा त्याग दया तप मानवता गुण भाई,
इनके बिन मानव नहिं कबहूँ मानव ही रह जाई।

जग बंधन में बार बार बँधि व्याकुल सकल जहाँना,
बिना त्याग कह जगत माहिं को मानव हुआ महाना।

सुख हो दुख हो मस्त रहो नित कहता चन्दर भाई,
ईश्वर का वरदान श्रेष्ठ तुम करते रहो भलाई।

मंदिर में नहिं मूर्ति नदी में नीर पुत्र कुल नाहीं,
तैसहिं व्यर्थ लगत जीवन जब शान्ति नहीं मन माहीं।

आपन अहम त्यागि मानव तब ही जग का हो पाता,
जैसे बाँस त्यागि अपनापन मधु मुरली बन जाता।

राह एक परहित अति उत्तम और राह सब कारी,
जहाँ होत मन स्वारथ भाई तहाँ मनुजता हारी।

करम धरम वाणी विचार सम वह ही पंथ कहाये,
परहित महँ कर्तव्य समर्पित सोइ धरम हो जाये।

हिय महँ ईश्वर शुभ विचार मन श्रद्धा भाव उदारा,
वही पुजारी मानवता का करत सोइ उजियारा।

जब तक साँस रहे तब तक हे मानव कर उपकारा,
अनगिन पीड़ित इस संसृति में रहो दयालु उदारा।

जा मन महँ परहित विचार हो सोइ ईश कै दासा,
ताकर चरन पड़त ही क्षन महँ लोभ मोह भय नासा।

मानवता खातिर चन्दर कर जीवन अर्पण सारा,
मानव जनम सफल हो जाई जनम न होइ दुबारा।

उत्कट अर्पण की जिज्ञासा जब हो मन के अन्दर,
तभी सामने आता ईश्वर सत्य रूप धारण कर।

सब समान हो मिले सभी को सम अधिकार मनुजता,
यही लक्ष्य चन्दर जीवन का हो हर हिय मानवता।

पानी दूध सदृश पति पत्नी रहे सदा संसारा,
पड़े न तनिक खटाई वरना फट जाई व्यवहारा।

मानवता

सुख लेने की चीज नहीं प्रिय देने से नित बढ़ता,
फूल कभी कुछ लेता नाहीं दे दे निश दिन हँसता।

सच्चा मानव सत्य धर्म के परिधि माहिं नित रहता,
हो चाहे वह किसी पंथ का पर दुर्भाव न करता।

सत्य आग की ज्वाला में जल जीवन ज्योति जलाओ,
मानवता के लिए नींव का पत्थर तुम बन जाओ।

नित्य स्वयं के लिए जानवर ही जीवन जीते हैं,
पर मानव तो मानवता पर न्योछावर करते हैं।

स्वारथ में सेवा करता जो वह ढोंगी कहलाता,
पर उपकार करत निस्वारथ वही परम पद पाता।

प्रेम सूत्र में सारी दुनियाँ जिस दिन बँध जायेगी,
राग द्वेष से मुक्त मनुज मन मानवता छायेगी।

जो मानवता धरि हिय बोले वेद वही कहलाये,
चल पड़ता जो उसी राह पर वेद व्यास हो जाये।

पिंजरे से मत प्यार करो तुम इक दिन छुट जायेगा,
सदुपयोग कर किसी और पथ काम नहीं आयेगा।

तन मन कर्म तबहि निर्मल जब पर सेवा रत भावा,
निर्मल मन महँ ईश विराजे ह्रदय प्रेम रस छावा।

पत्थर पूजि हुए तुम पत्थर मानवता न दिखाई,
अनगिन प्राणी भूखे जग में देख शरम ना आई।

ईश भाव का भूखा प्यारे सब अर्पण कर देना,
तेरी बिगड़ी वही बनाये याद उसे कर लेना।

तन पावन होवत स्नान से मनवा ध्यान लगाई,
धन पावन होवत सुदान से सोइ त्रिवेणि कहाई।

होत मूल्य नहिं धन दौलत की हानि लाभ कछु नाहीं,
मूल्य होत कितना कब अर्पित कर्म परम पद माहीं।

दुष्ट शिष्य खल नारि क्रूर नृप मिलत तहाँ सुख नाहीं,
जीवन नरक समान गिरत मनु मानवता नित ताहीं।

पर उपकार करत जीवन भर निज सुख दुख तजि जोई,
मुक्त होत जीवन महँ पावत परम शान्ति सुख सोई।

भगत नित्य अर्पित करता हिय आत्म भाव पद साई,
पर गृहस्थ सत कर्म समर्पित परम शान्ति पद पाई।

सच्चा धन वह जो दूजे के सदा काम आता है,
स्वारथ हेतु रखा गड़ही जल सम विष बन जाता है।

जीवन जीओ बिना कर्ज के आनन्दित मन तबही,
धर्म वही मनु पग बढ़ता है पर सेवा महँ जबही।

ज्यों कूएं में नीर नहीं हो पुत्र नहीं कुल माहीं,
त्यों जीवन ही व्यर्थ जान जब परहित मन महँ नाहीं।

तन मन वाणि जगत पर अर्पित भले प्राण चलि जाये,
जग कल्याण हेतु शिव पी विष नीलकण्ठ कहलाते।

आज यहाँ कल वहाँ न जाने परसों कहाँ ठिकाना,
जाने कब तक इस जग में कब पार जगत के जाना।

जोड़ जोड़ जीवन भर राखे वह अपना न रहेगा,
पर हित महँ उपकार किये जो वह ही फूल खिलेगा।

मेरा नित आशीष तुम्हें है फलो नित्य जीवन भर,
पर सेवा में नित रत चलना अग्नि कर्म के पथ पर।

सार्थक एक निमिष का जीवन हो परमार्थ निछावर,
सहस साल कै व्यर्थ जिन्दगी जो स्वारथ महँ भावर।

मिट्टी में हो खाक बीज जब तबहि फूल फल लागे,
कर अपना सर्वस्व निछावर तब हिय ईश्वर जागे।

मधु मक्खी रस चूस चूस के शहद संग्रहित करती,
ले जाता दोहन वाला पर मक्खी हरषित रहती।

करो सदा उपकार इसी में तेरी सकल भलाई,
करता जो अपकार उसी की होती जगत हँसाई।

पर सुख में सुख रहना ही तो मानवता कहलाये,
दुखी होइ क्यों जला रहे हिय दुख तो दुखहि बढ़ाये।

काम जाय तब चिन्ता जाये मन प्रशान्त हो पाये,
लोभ मोह भय मिटे मनुज तब परहित हृदय सुहाये।

आँख होत तुम देख न पाये आपन कटु व्यवहारा,
अहंकार में पागल हो तुम भूल गये संसारा।

प्रगति चाहते हो स्वदेश का तो सँग कदम बढ़ाओ,
भेद बुद्धि तज विनय प्रेम से सबको गले लगाओ।

झूठ बोलना मिथ्यास्वासन लोभ मोह निर्दयता,
होत अधर्म मनुज जग माहीं त्यागि धरो मानवता।

भटक रही है आज मनुजता राह न दीखत कोई,
भूख प्यास से तड़प रही नित बुधि विवेक सब खोई।

झंझवात में झरती उसकी कुटिया नित झरनो सा,
दे दें उसको इक दो पतरा जगी न क्यों अस मनसा।

हाड़ कपाती ठंढी में वह नंगे तन ही सोता,
इक गज कपड़ा दे देते तो जीवित तो वह रहता।

मानव जनम मिला है प्यारे मानवता दिखलाओ,
स्वार्थ त्यागि परमार्थ कर्म में मानव तू लग जाओ।

छेनी और हथौड़े का जो शिला घात सहता है,
सोइ फूल से पूजित तापर शंख घंट बजता है।

कदम बढ़ा पीछे नहिं धरना हो भल गिरि वन खाई,
भरि साहस हिय बढ़ते रहना लक्ष्य तोहिं मिल जाई।

अंत घड़ी आई तव जाने किस पथ पर है जाना,
समाँ बुझ गई तव पहचाने कैसे दीप जलाना।

दोहा– प्रेम दया करुणा मनुज जब स्वभाव बन जाय,
पर उपकारी भावना मानवता कहलाय।

नारी

नारी स्वरूपा प्रकृति बिन जग माहिं पुरुष अपूर्ण है,
संसार की रचना बिना इसके अधूरा चूर्ण है,
जब तक समष्टि प्रकृति न आपन देत आँचल निर्मला,
तब तक न जीवन इस धरा पर प्रगट भल ईश्वर कला।

हो व्यष्टि अथवा हो समष्टी नारि मूलाधार है,
बिन नारि के इस जीव का जग में न कोई सार है,
शक्ती स्वरूपा नारि अपने अंक में ममता लिए,
सारे जगत को पालती निस्वार्थ हिय समता लिए।

माँ पार्वती लक्ष्मी सरस्वति अदिति शचि कात्यायनी,
हैं देवहुति सन्ध्या अरुन्धति गारगी सुलभा गुनी,
मैना सती सावित्रि अनसुइया सभी जग ख्यात हैं,
पिंगला सुकन्या सुनिति घुश्मा गुणी कुन्ती मात हैं।

लाखों सहस हैं नारियाँ जिनके बिना सूना जगत,
हैं सब कुशल वीरांगना भक्तिन सती विज्ञान रत,
जिनके कुशल नेतृत्व की संसार लोहा मानता,
जिनके बिना मानव मनुजता को न कोई जानता।

इन्दिरा व सुषमा सोनिया ममता व ललिता साहसी,
नित पग बढ़ाती बढ रही माया वसुन्धा राजसी,
सब दे रहीं निर्देश सारे देश को बल बुद्धि से,
अरु बढ़ रहीं हिय में लिए साहस निरन्तर शुद्धि से।

नारी

नारी रही ना अब रहेगी पुरुष से पीछे कभी,
बढ़ता कदम उसका रुकेगा लक्ष्य मिल जाये तभी,
तुम राह में रोड़ा न डालो पुरुष पौरुष बल लिए,
अब ना रुकेंगी नारियाँ सब बढ़ रही बुधि बल लिए।

नारी माया की स्वरूप है मायामय भगवाना,
ईश्वर सृजन जगत का करता नारी पुत्र महाना।

अस नारी कै करत मान जो सो मानव कहलाये,
पर अपमान करत जो ताकर भाग्य फूट क्षण जाये।

पौरुष में कमजोर भले हो आत्म शक्ति बलवाना,
जीवन लक्ष्य हेतु नारी महँ अन्तर ज्योति महाना।

नारी को भोग्या मत समझो अतुलित शक्ति समाई,
करती कबहुँ सृजन कुल दीपक कबहूँ खड्ग उठाई।

कबहूँ जलती कबहूँ मरती बलात्कार तक सहती,
पर नारी अस शक्ति जगत की पीछे पग नहिं धरती।

पग मिलाइ तुम बढ़ो तो सही पीछे वह न रहेगी,
जीवन के निर्माण राह पर नारी ज्योति जलेगी।

नारी का ही प्रेम पियारे तुमको सुदृढ़ बनाती,
वरना भाग्य न जाने तुमको किस पथ पर ले जाती।

एक ईश को कर प्रणाम जिसने ब्रह्माण्ड बनाया,
एक मात की कर सेवा जिसने दी आँचल छाया।

नारी

लज्जा विनय शील मृदु वाणी नारी गुण कहलाये,
हिय महँ ममता आँचल में पय भरि भरि नित बरसाये।

माँ की उपमा जग में नाहीं माँ पूरण कहलाये,
उपमा में तो उप होता फिर पूर्ण कहाँ से आये।

नारि शक्ति को पहचानो वह करती जगत सृजन है,
इसके ही आँचल में निश दिन फूलत फलत चमन है।

क्रोध करो तो माँ की नाईं सदा कठोर दिखाए,
पर अन्दर से प्रेम पियाला भरि भरि नित्य पिलाये।

जहँ सम्मानित नारि तहाँ सुख शान्ति सदैव विराजे,
तहाँ स्वच्छता और सरलता मृदुता नित्य सुसाजे।

जग पवित्र होवत सतीत्व से जो स्त्री शृंगारा,
करती विजय कलुष मन ऊपर बनती सदा सहारा।

बिन नारी जग निरस अशोभित जानत हो सब कोई,
फिर कन्या हत्या क्यों करते संसृति नीरस होई।

हो चाहे वह किसी वर्ग की नारि अबध्य कहाये,
स्वयं धरा पर ईश नारि का कर सम्मान बढ़ाये।

कुटुम चलाती सदा रही वह कदम बढ़ा सकती है,
उसको उसका आसन दे दो देश चला सकती है।

ज्ञानी विज्ञानी बन सकती साध्वी डाक्टर नेता,
नारी क्या नहिं कर सकती बन सकती वह अभिनेता।

नारी

करो नहीं संदेह शक्ति पर अतुलित बल भंडारा,
लोक और परलोक जाइ लाती जीवन कै तारा।

कुरुक्षेत्र सम युद्ध कर रहे पुरुष नित्य संसद में,
नारी जीना सिखलायेगी मनुज तुम्हें संसद में।

पुरुष जहाँ तक पहुँच न पाता नारी पहुँच दिखाती,
सृजन करे सारी संसृति की ममता नित्य लुटाती।

ऐसे बलशाली हाथों को गर्भ माहिं मत मारो,
चमन इन्हीं से सुरभित होता दिग दिगंत युग चारो।

शक्ति स्वरूपा नारि ईश की अति सुन्दर रचना है,
इससे ही मोहित सारा जग अस अमृत वचना है।

गर्भ माहिं धारण करती जग और महान कहाती,
पालन पोषण करि करि विद्या देइ सुयोग्य बनाती।

विष्णु समान कोइ नहिं दाता नदी गंग सम नाहीं,
पूजनीय शिव सम कोई नहिं माँ सम गुरु जग माहीं।

पुरुष नारि का आश्रय लेकर स्वयं जगत में आता,
उसकी करुणा ममता पाकर धन्य धन्य हो जाता।

नारी का एहसान तुम्हारे ऊपर बहुत बड़ा है,
कर उसका सम्मान तुम्हारे संग समाज खड़ा है।

हर गृहस्थ आश्रम में नारी सुख निशा दिन भरती है,
लोक और परलोक दोउ पर विजय प्राप्त करती है।

नारी

त्याग तपस्या करुण दया की मूर्ति नारि कहलाती,
युद्ध माहिं ले खड्ग प्राण तक न्योछावर कर जाती।

प्रकृति बिना है पुरुष अपंगा शक्ति बिना शिव हारा,
रस विहीन कछु कला न भाये नारि बिना संसारा।

मादकता सुन्दरता मृदुता आकर्षण सुकुमारी,
अभय सरसता वशीकरण नित विद्यमान गुण नारी।

ताहि भरोसे सेइ सेइ नित पाल रही संसारा,
मर्यादित जीवन मानव का होगा करुण उदारा।

सोइ पुरुष माँ की ममता पर कालिख पोत रहा है,
जिस आँचल में दूध पिया उसको ही नोच रहा है।

नारी निर्मल नभ में उड़ने को स्वच्छंद खड़ी है,
प्रगति राह पर कदम बढ़ाने को निर्द्वन्द अड़ी है।

पंख कतरने को कैंची ले पुरुष समाज खड़ा है,
पैर तले बाधा स्वरूप गिरि कानन सिंधु अड़ा है।

कहीं जलाई जाती नारी कहीं प्रताड़ित होती,
कहीं निर्भया विवश होइ अपने अभाग्य पर रोती।

गली गली हर चौराहे पर दानव घात लगाये,
देख रहे तीखी नजरो से मीन जाल कब आये।

आज सुरक्षित कतहूँ नाहीं नारी घर आँगन में,
बस गाड़ी पैदल रिक्सा या चौराहा कानन में।

नारी

नीयत नैतिकता मर्यादा आज कराह रही है,
लुटी जा रही मुझे बचाओ रो रो बुला रही है।

जब तक नीयत नैतिकता पर ध्यान नहीं जायेगा,
तब तक कर्म कुकर्म भेद नहिं मानव कर पायेगा।

मात पिता का फर्ज एक शिशु को बस मनुज बनाये,
अर्थ प्राप्ति शिक्षा नहिं मन महँ मानवता उपजाये।

बने हुए हैं नियम दंड बहु मानत पर नहिं कोई,
नीयत साफ नहीं मन महँ कस नैतिकता हिय होई।

जब तक अलख जगेगा नाहीं अधियारा न छटेगा,
पशुता दानवता मन भीतर बढ़ता नित्य रहेगा।

नारि शक्ति पहचानो भाई है वह बुद्धि प्रभारी,
नर नारी मिल कदम बढ़ाओ तबही प्रगति तुम्हारी।

पुरुष वही जो करत नारि कै नित आदर सतकारा,
नारी होवत मात बहन सुति देवि स्वरूप उदारा।

नारी को स्वच्छन्द छोड़ वह अपनी राह चलेगी,
तबही करुणा प्रेम दया की निर्मल ज्योति जलेगी।

दोहा– नारी प्रकृति स्वरूप धरि ममता समता रूप,
सृजन करे संसार ले अंक छाँव अरु धूप।

कामना

छंद- जहँ चाह हो मन मिले व्यक्ति व वस्तु निज अनुकूल ही,
भल हो जगत का नाश पर मेरा खिले नित फूल ही,
तब जान मन में कामना ले आश कातर ताकती,
अब चल न पायेगी मनुज की बल विवेकी बुधि गती।

सबसे प्रबलतम मनुज तन का यही मूल विकार है,
मिलती कभी है ज्योति इससे पर कभी अधियार है,
पागल दिवाना मनुज जग में नित इसी पथ भागता,
सुख दुख पराजय जय भले मानव कभी नहिं मानता।

यह कामन मन की चपलता का मृदुल परिणाम है,
जो फँसे माया जाल में उसका अंगूरी जाम है,
मनु जब तलक मन को न समता योग से है बाँधता,
नित तब तलक मन कामना अन्तःकरण को साधता।

इस कामना का एक पथ ईश्वर तरफ जाता सदा,
अरु एक पथ पर जगत का जंजाल ही भाता सदा,
इस कामना के एक पथ पर जीत इक पर हार ही,
अरु एक पर दुदकार मिलता एक पर बस प्यार ही।

जग पाप भय दुख दर्द मिलते कामना से काल में,
नित ही इसी से मनुज फँसता इस जगत जंजाल में,
इस कामना से द्वन्द हिंसा मोह ममता बाँधती,
छल-छद्म राग विद्वेष इसमें नित निरन्तर पागती।

लालच बड़ी बुरी रे भाई निशदिन बढ़ती जाये,
काम क्रोध मद मोह लोभ की जड़ यह ही कहलाये।

जब तक मन में रहत कामना तब तक क्रोध न जाये,
होवत घोर अँधेरा रस्सी साँप समान दिखाये।

उपजत क्रोध तबहि जब भीतर काम पूर्ण नहिं भाई,
लगत कठोर घात मन व्याकुल क्रोध प्रगट हो जाई।

होत कामना वेल समाना निश दिन बढ़ती जाये,
जहाँ भक्ति तहँ सूखत क्षन में जहाँ सक्ति तहँ छाये।

अपने कर में अपना जीवन चाहे स्वर्ग बनाओ,
चाहे जग माया में फँस तू घोर नरक महँ जाओ।

सुख देखत सो मूढ़ कहाये दुख देखत सो ज्ञानी,
माया को दुख माने साधू सुख माने अज्ञानी।

संसारी की कभी कामना पूर्ण नहीं होती है,
एक एक पर एक निरन्तर बढ़ती ही रहती है।

जप तप में सत्कार मान की चाह होय तो भाई,
जान सकाम कर्म उससे नहिं मिलत कबहुँ प्रभुताई।

ईश प्रेम में मतवाला जो ममता बाँध न पाये,
बँधत वही जो काम क्रोध मद लोभ मोह मन लाये।

नीद न आये तो टटोल क्यों मन बेचैन हुआ है,
परिग्रह की है आश प्रबल या कहीं स्वभाव मुआ है।

भोगी ही रोगी होता है जोगी स्वस्थ्य सुहाये,
इस को काम सताये प्यारे इक को राम जगाये।

औरों से तुलना मत करना ईर्ष्या जागृत होगी,
मन महँ लोभ मोह भय जागी बन जाओगे भोगी।

ईर्ष्या पहले स्वयं जलाये फिर दूसर घर छाये,
ईर्ष्या से धधकत तन मन मनु मानवता मरि जाये।

महाभूत मानव तन मन को नित्य विमल रखते हैं,
पर अपनी ईर्ष्या से पीड़ित मानव खुद जलते हैं।

जड़ लकड़ी पत्थर से निर्मित मंदिर मसजिद भाया,
पर चेतन प्राणी प्रति हिय में राग द्वेष क्यों छाया।

अपनी संस्कृति और सभ्यता जब मन को ना भाये,
तब जानो मन दुर्बल तेरा अन्दर काम सताये।

और और की चाह बढ़े मन सो ही लोभ कहाये,
जो है पास रहे नित मेरा यही मोह हो जाये।

तुम अधर्म पथ नाहीं चलना हार तुम्हारी होगी,
धर्म राह पर चलने वाला जग जीता हर जोगी।

नश्वर जग में मन भरमाया कैसे ईश दिखेगा,
कंकड़ पत्थर संग रमाया कैसे अमिय चखेगा।

घर वर मित्र पुत्र पुत्री धन छोड़ बने संयासी,
मान बड़ाई पर नहिं छोड़े देख देख जग हाँसी।

चाह असीम अनन्त गगन सम ओर छोर नहिं भाई,
त्याग सके जो सोइ महात्मा त्यागी साधु कहाई।

चल अध्यात्म राह पर मानव स्वार्थ छूट जायेगा,
ईश राह पर चलने वाला डूब नहीं पायेगा।

होत वस्तु से चाह न पूरण चाहे जग मिल जाये,
चाह पूर्ति की एक राह बस ईश प्रेम हिय छाये।

ईर्ष्या होत निवृत्ति तबहिं जब मनु समत्व पहचाने,
बिन समत्व के अखिल विश्व को मनुज न अपना माने।

अपना दोष न स्वार्थी देखत सोचत नहिं अभिमानी,
क्रोधी होवत अंधा कामी ऊँच नीच नहिं जानी।

कर्जदार पितु व्यभिचारिणि माँ खल सुत स्त्री कुलटा,
चारहु कुल नाशक कहलाये हो इनकर गति उलटा।

अधम मनुज चाहत धन दौलत मध्यम धन यश भाई,
चाहत उत्तम पुरुष जगत से यश जो कबहुँ न जाई।

उत्तमतर ऋषि मुनि यति ज्ञानी जो चाहे यश नाहीं,
समता पर उपकार दया प्रति न्योछावर जग माहीं।

जाना था तुमको देवालय पहुँच गये मदिरालय,
भूल जगत के उहा पोह में पथ धर लिये दुखालय।

बिना परिश्रम मिलत जोइ धन ममता मोह बढ़ाये,
क्षीण होत तन मन विवेक बल कुल कै नाश कराये।

कामना

भला आदमी वह होता जो सबकी करे भलाई,
बुरा वही जो अपने वालों से ही प्रीति लगाई।

भाई का हक हड़प न लेना वरना पाप पहारा,
तेरे सर ऊपर घहराई मिली न एक किनारा।

मत पगला तू धन पर प्यारे धन तो आता जाता,
चंचल लक्ष्मी को जग में कह कौन रोक है पाता।

राह कामना का अति टेढ़ा मनुज ताहिं गिरता है,
पुनि मन भीतर लोभ मोह भय क्रोध दौड़ पड़ता है।

तृप्त न होवत मनुज काम से रंक होइ या राजा,
ता ते समता योग माहिं तू कर नित सरवस काजा।

काम कामना इच्छा कह लो सबही एक समाना,
ता महँ फँसि मानव दुख पावत मिलत नाहिं विश्रामा।

इच्छा नागिन से बच रहना वरना वह डस लेगी,
विष पिलाइ पुनि अमिय राह पर कैसे चलने देगी।

कभी कामना पूर्ण न होवत सच कहता मैं भाई,
जो जाने सो साधु संत सदगुरु ज्ञानी कहलाई।

दोहा- जा मन उत्कट कामना अंधा सो नर होइ,
काम रहित नर जगत में घूमत आपा खोइ।

स्वपथ

हर मनुज की है सोच होती भिन्न बुधि अनुसार ही,
संगति सुविद्या ज्ञान भावाभाव जस संस्कार ही,
सोचत वही जो मिलत वातावरण से भरसक उसे,
पुनि करत कर्म अकर्म जस जग मिलत पथदर्शक उसे।

निज सम बनाना चाहता नव राह वह संसार में,
अरु पग बढ़ाना चाहता है स्वयं निर्मित राह में,
जो चल पड़ा है अरु चलेगा अमरता चूमें कदम,
नित भले रीति रिवाज खीचे टाँग पर करता न गम।

नव राह की क्षमता लिये जो पुरुष निश दिन चल रहा,
जो खाँइ पर्वत सिंधु कानन लाँघता है बढ़ रहा,
वह ही मिटाता नित बढ़ेगा मनुज के दुर्भाग्य को,
वह ही प्रकाशित कर सकेगा देश के सौभाग्य को।

जनम अजाँव सुकरम खण्डवा धरम भारती मेरा,
चन्दरदास दास ईश्वर कै मानवता कै चेरा।

वेद पुराण नहीं मैं जानू पर तेरा पद गाऊँ,
केवल दास तुम्हारा ईश्वर चन्दरदास कहाऊँ।

धन दौलत दसवाँ तेरही मरणोपरान्त नहिं चाहूँ,
जैसा कर्म किया हूँ वैसा फल केवल मैं पाऊँ।

कर्म अकर्म विकर्म किया जो उसका फल पाने दो,
पुत्र ईश अरु मोर बीच नहिं कर्म काण्ड आने दो।

कर लेने दो कर्म निरीक्षण मैं भी तो सच जानू,
अनुत्तीर्ण उत्तीर्ण हुआ हूँ साँच झूठ पहचानू।

मैं आत्मा नहिं कटूँ न सूखूँ जलूँ न होऊँ गीला,
कवन विधि यम त्रास देइ कह मैं काला नहिं पीला।

जान रहा मैं मर सकता नहिं यम के मारे भाई,
दुख कै सहन शक्ति प्रभु देई वह ही पार लगाई।

है पतवार करम का कर में भय नहिं मन मरने का,
एक आश बस अपने बल पर पाऊँ पथ तरने का।

एक प्रार्थना ईश कर्म सँग मात्र मुझे जाने दो,
स्वर्ग नर्क या मोक्ष कर्म से ही मुझको पाने दो।

मुझे भरोसा है सुकर्म पर मैं प्रभु पद पाऊँगा,
पूर्ण ब्रह्म में पूर्ण चन्द्र मैं पूर्ण पहुँच जाऊँगा।

युगों युगों से अपनों में फँसि मानव मरते रहते,
पर होते कुछ वीर स्वपथ पर कदम बढ़ाते चलते।

सत संगति अस मूल मंत्र जो जग आसक्ति छुड़ाये,
लगन लगे ईश्वर चरणों में हृदय ज्योति जल जाये।

निर्गुण और सगुण में केवल एक भेद मैं जाना,
जो दीखे वह सगुण न दीखे निर्गुण ही भगवाना।

ईश कृपा सतसंगति पाया और भगति हिय छाई,
अंधकार से उजियाला पथ उसी कृपा से आई।

धन बल ही भाई भाई में झगड़ा करवाता है,
मानव की मानवता का दम टूट यहीं जाता है।

जग के फेरे में मत पड़ना जग क्षणभंगुर भाई,
कर ले अन्दर की यात्रा तू मिलत यहीं प्रभुताई।

काम क्रोध भय होत न जब मन विचरत निष्पृह होई,
लोभ मोह अभिमान नहीं जब शान्ति प्रगट हिय सोई।

अपना ही मन नाहीं माने अपने हिय की बाते,
क्यों आशा करते तुम पगले माने रिस्ते नाते।

वर्तमान में जीने वाले महापुरुष कहलाते,
ज्ञानी जीवन माहिं न कबहूँ भूत भविष्य सजाते।

सत्य प्रेम से ना मुख मोड़ो ईश्वर रूप यही है,
प्रेम राह चलता जो साधो जीवन धन्य वही है।

बादल सँग जल सदा विचरता उच्च गगन में भाई।
पर मिट्टी सँग नीर कीच हो पैर तले कुचलाई।

औरों का जो करे भरोसा मूर्ख वही कहलाता,
अपने पग चलने वाला नव पथ निर्मित कर जाता।

मन में सत का रंग चढ़े तवही सतसंगति भाई,
सतसंगति से मानव मन में मानवता भर जाई।

ज्ञान समान राह नहिं दूजा जो सत पथ ले जाये,
राह नहीं अज्ञान सदृश जो पग पग तोहिं गिराये।

मन हो कभी व्यथित चंचल तो सतसंगति कर लेना,
और न कोई औषधि जग में मानव घर घर देना।

जो पाना था वह नहिं पाया जो पाया तैयारी,
ना जाने कब प्रीय मिलेगा जो नित आत्म पुकारी।

मौत एक दरवाजा प्यारे इससे क्या घबराना,
स्थूल जगत से शूक्ष्म जगत की है यह पंथ सुहाना।

शत्रु नहीं है मृत्यु तुम्हारा मित्र उसे तुम जानो,
जा सकते हो पार उसी के संग मनुज सच मानो।

किये न सेवा मात पिता की जग की कर पाओगे,
कैसे करे भरोसा ईश्वर उसके हो जाओगे।

अति प्रसन्नता में नहिं देना वचन होत भल नाहीं,
अतिशय क्रोध माहिं नहिं लेना कछु निर्णय मन माहीं।

विद्या कामधेनु सम जानो नन्दन वन संतोषा,
यम सम क्रोध काम वैतरिणी कर मनु वचन भरोसा।

विद्याहीन कबहुँ नहिं सोहत भले रत्न रंजित हो,
वस्त्रहीन नारी नहिं मोहत भले स्वर्ण सज्जित हो।

करो प्रतीक्षा समयनुकूला समय देख तज भाई,
होवत समय एक सम नाहीं प्रण कैसे इक छाई।

बलवानों में श्रेष्ठ आत्मबल ज्योति आँख सम नाहीं,
गीता सम उपदेश न दूसर धर्म समान न छाहीं।

सर्प न त्यागत विष भल पीये कितनहुँ दूध मलाई,
तैसहिं दुष्ट न तजत दुष्टता भल सदगुरु मिल जाई।

जप तप दान धर्म विद्या बल रहत न जिनके पासा,
सो नर अधम अधायु व्यर्थ महँ रखत ईश कै आशा।

जनम अकेला मरन अकेला करम अकेला भाई,
नरक स्वर्ग पद मिलत अकेला क्यों जग प्रीति लगाई।

देखि सकत नहिं जोइ समय को सो होवत अज्ञानी,
आपत काल जानि जागत नहिं सो मानव अभिमानी।

धनी बली कै सब जग आपन दीनन कै को भाई,
गिरत एक तो नमन कहावत दूसर जगत हँसाई।

ईश्वर के हो अंश दुलारे ईश्वर ही बन रहना,
करुणा प्रेम दया समता जग नित्य लुटाते चलना।

दुष्ट मित्र सँग शान्ति न कबहूँ दुष्ट नारि सुख नाहीं,
राजा दुष्ट होय तो भाई देश डुबत क्षन माहीं।

विद्या जो व्यवहार संग हो करे राह उजियारा,
होत किताबी ज्ञान व्यर्थ जो बनत न कबहुँ सहारा।

जीना है तो राह बना अपना संसार चलेगा,
मरना है तो भीड़ माहिं चल भेड़ समान मरेगा।

दोहा- निज स्वभाव विश्वास निज आस्था अरु उत्साह,
होत स्वपथ जबही कदम बढ़त मनुज नव राह।

जागो

जो जगा पाया वही है अमरता संसार में,
जो यहाँ सोया वही खोया जगत मजधार में,
जो न सोया अरु न जागा रत रहा व्याभिचार में,
जो जगा सोया वही खोया जगत के प्यार में।

जागते ही तन सदृश दीखे सकल संसार ही,
कीट पक्षी वृक्ष पशु मनु में दीखे इक प्यार ही,
जागते ही भावना उपकार की ऐसी जगे,
प्राण न्योछावर करे संसार पर मानो सगे।

हृदय में करुणा दया की ज्योति जलती रात दिन,
प्रेम झरना झर रहा हो ज्यों निरन्तर रात दिन,
जगत सुख दुख मानि अपना देत सरवस जब कभी,
जान लो वह जागता है नित्य हर क्षण औ अभी।

कितना जनम भटकते बीता जागोगे कब प्यारे,
कही व्यर्थ नहिं बीते जीवन अब तो जाग दुलारे।

बाल अजाना यौवन अंधा वृद्ध रोग कै गागर,
जाग युवान नहीं तो तेरे आगे दुख कै सागर।

गाड़ी बँगला अनगिन साधन तुमको लागे छोटा,
पर कर याद मृत्यु सैया की चार बाँस कै टोटा।

भला बुरा नहिं कोई भाई सब में ईश समाया,
बुरा गुणों को जान पियारे गुण ही है भरमाया।

बिना परिश्रम धन आवत जो नाश करावत सोई,
श्रम से प्राप्त एक पैसा भी मनु अमृत सम होई।

तन सेवा भी मन से करना होती ईश्वर पूजा,
तन - मन्दिर से बढ़ कर नाहीं जग में कोई दूजा।

तन की शोभा सेवा में है प्यारे करते जाना,
कहीं चूँग ना जाये चिड़िया पड़े न पुनि पछताना।

तुम विनम्र हो पर मत सोचो हो विनम्र तुम भाई,
यही सोच तो अहंकार की होती बीज बुआई।

सूई सज्जन और सुहागा सदा योग रत रहते,
कैंची दुर्जन मनुज कुल्हाड़ा सदा अलग ही करते।

मंत्री गुरु प्रिय वैद्य सदृश तू सावधान नित रहना,
ना जाने कब फिसल जाय पद सभल सभल तू धरना।

ज्यों अपना हित शिशु नहिं जाने पर माँ जाने सारा,
त्यों ईश्वर सबका हित जाने कर विश्वास हमारा।

जहाँ सत्य है वहीं अभय है गाँठ बाँध मन अन्दर,
जहाँ अभय है वहीं सफलता होवत सोइ सिकन्दर।

वही अन्न होटल में खाना घर भोजन कहलाये,
मंदिर में जब भोग लगे तो वह प्रसाद हो जाये।

जब तक मन सँग जीता मानव तब तक मनुज कहाता,
बुधि विवेक सँग जीने वाला मनुज देव हो जाता।

कल पर सभी उम्मीद तुम्हारी कौन देख कल पाया,
करना है जो आज करो कल काल बना सर छाया।

जड़ में यदि रोग लगा तो कैसे फूल खिलेगा,
मन में ईर्ष्या राग द्वेष तो कैसे दीप जलेगा।

काम क्रोध उपजे कुसंग से सतसंगति से नाहीं,
बिन सतसंग ठौर ना कतहूँ मिलत मनुज जग माहीं।

करि कुसंग कह कौन हुआ है जगत महान बताना,
अन्तकाल बेहाल होइ सब जात लुटाइ खजाना।

जान गई महिमा कुसंग की कैकेई महरानी,
कुटिल मंथरा मिली मिला नहिं पुत्तर यश धन पानी।

ईश द्रोहि जग द्रोही होवत कहइ शास्त्र गुरु संता,
भले होय सुत पति पत्नी मित तज विष सम लखि हंता।

लोभ मोह की प्यास मनुज मन काम क्रोध उपजाये,
पर सतसंगति जीव ब्रह्म का सच्चा ज्ञान कराये।

करत कुसंग मलिन अन्तस्थल बुद्धिनाश ततकाला,
मन भीतर संतोष तनिक नहिं फुफकारत दुख व्याला।

करत कुसंग बचन तन मन से सो मनु असुर कहाई,
करत प्रीति जो सतसंगति से सोइ देव हो जाई।

भला लगत तब तक कुसंग जब तक सतसंगति नाहीं,
अंधकार तबही तक जब तक उदित न रवि जग माहीं।

सत्य वही जो तीन काल में कबहूँ नष्ट न होता,
जनत मरत सो असत कहावत जीव ताहिं महँ खोता।

समय रहत तू जाग पियारे नहिं तो मर जायेगा,
जीवन का सत लक्ष्य तुम्हारा कैसे मिल पायेगा।

अभिमानी कहते मेरे बिन कौन सुकर्म करेगा,
मूरख! बिन बोले मुर्गा के क्या प्रभात नहिं होगा।

मूरख आँखें बन्द तुम्हारी अधियारे में चलते,
अंधकार में चलने वाले ही ठोकर खा गिरते।

पशु भी नहिं गिरते पशुता से पक्षि न पेड़ लता से,
पर घमंड में क्यों गिरते तुम मानव मानवता से।

मृत्यु देख तू क्यों डरते हो तोर नहीं यह काया,
बिना मृत्यु के भव सागर से कौन पार हो पाया।

हम तो जान सके न स्वयं को प्रभु को क्या जानेगे,
बिच्छू मंत्र न जाने कीरा बिल कर क्या डालेगे।

आतंकी का धरम न कोई ना मजहब होता है,
वह तो जाति व धर्म नाम पर केवल विष बोता है।

देख रहे मिट्टी बर्तन को मिट्टी क्यों न दिखाई,
देख जगत जगदीश न देखे सोवत हो क्या भाई।

प्यास न बुझती कभी पियारे धन दौलत पाने से,
शान्ति न मिलती मानव अपनी यशः गान गाने से।

हम बढ़ते हैं तुम भी बढ़ लो आज गले मिल जायें,
भूल गिला शिकवा सरवस हम आगे कदम बढ़ायें।

अन्त समय मन राम न आये आवत नजर जहाँना,
समय रहत तू जाग मुसाफिर पड़े न पुनि पछताना।

सोच जरा ईश्वर ने तुमको क्या क्या नहीं दिया है,
कितने की है माँग तुम्हारी कितना व्यर्थ पड़ा है।

मत रख औरों के सुभाग को डाकू कहलाओगे,
मृत्यु समय दुख भोगि भोगि पुनि घोर नरक पाओगे।

क्रोध पाप का मूल ज्ञान बुधि तनिक नहीं रहता है,
सूझ पड़े नहिं हानि लाभ चहुँ दिश अधर्म बहता है।

करो भरोसा नाहिं तनिक तू हो पर आपन कोई,
आज मनुज धन पर पगलाया नाता रिस्ता खोई।

भय न अकेलेपन से करना यदि जीवन है जीना,
तुम्हें अकेले आना जाना रहो अकेले लीना।

धीरे धीरे उमर जा रही अब तुम कब जागोगे,
बिन जागे जीवन जी कर भी मानव क्या मागोगे।

जिसने प्रभु को माँगा पाया वह ही जानो जागा,
जिसने प्रभु से माँगा खोया होता वही अभागा।

संप्रदाय दीवार बनाते मानव दिख जायेंगे,
पर दीवार गिराने वाले ईश्वर कब आयेंगे।

जागो

जहाँ ईश है वही धर्म है साधो इतना जानो,
जहाँ धर्म है वही ईश है इतना तो पहचानो।

बाहर देख देख तू मरते अन्दर झाँक जरा तू,
जगत सृजन वाला अन्दर है जिसको ढूँढ रहा तू।

जग बंधन में बधि पगलाया कह कब आँख खुलेगी,
जाग मनुज बिन समय गवाये वरना मौत छलेगी।

कर श्रृंगार मचलते इक दिन राख शेष रह जाई,
समय रहत तू जाग मुसाफिर तब ही सत्य दिखाई।

एक अकेला आगे बढ़ता वही मनुज कहलाता,
भीड़ माहिं चलने वाला मनु भेड़ होइ मर जाता।

खेल खेल में जगत बनाया पलक बिछाये बैठा,
राग द्वेष अभिमान माहिं तू मानव क्यों है ऐठा।

जहाँ जहाँ मन जा सकता है वहाँ वहाँ जायेगा,
कर ले शुद्ध विचार सकल जग ईश नजर आयेगा।

हानि लाभ के गणित संग तू जीवन बाँध रखे हो,
कैसे सत जानोगे अब तक क्या तुम जाग सके हो।

बीता क्षण फिर लौट न आता सभल सभल तू जीना,
एक एक क्षण मूल्यवान है जान अमिय रस पीना।

हमें भरोसा यदि हो जाये ईश हृदय में रहता,
तो नफरत की आग कहो क्यों हृदय माहिं नित जलता।

बेहोशी ही मूल क्रोध का सीख होश में जीना,
जागे सूर कबीर तुलसि रवि हो गये जगत प्रवीना।

जागा जो उसका सुकर्म ही सदाचार बन जाता,
सोता मानव विष अमृत में भेद नहीं कर पाता।

तुच्छ विचार लेइ मन भीतर सतसंगति करते हो,
कैसे चिदानन्द मिल पाये निर्मल कब रहते हो।

मानवता आधार नियत पथ नैतिकता संस्कारा,
संस्कार आधार मनुज बस मात पिता गुरु द्वारा।

चिन्ता चिता समान न करना चिन्तन कर नित भाई,
चिन्तन से सारा जग अपना चिन्ता अलग कराई।

नीति धर्म का हाथ पाँव है सदा नीति पथ चलना,
फूलत फलत तबहि नैतिकता मानवता धरि रहना।

ममता चित पर बोझ लुभावन चिन्ता रोग समाना,
दोनहुँ महँ नाचत सिर ऊपर मृत्यु रूप धरि नाना।

आलस नींद प्रमाद माहिं तुम नित्य रहे कब जागे,
भरा तोर हिय काम क्रोध से ईश्वर कहाँ विराजे।

ममता से है क्रोध क्रोध से द्वेष द्वेष से हिंसा,
हिंसा से सर्वस्व नाश जो जाने सोइ अहिंसा।

ईश नाम पर धरम अनेकों जा महँ जग भरमाया,
धरम जगत में एक अकेला प्रेम रूप धरि आया।

अपना आपा त्याग मनुज तुम आगे कदम बढ़ाओ,
मातृभूमि प्रति सच्ची श्रद्धा अरु विश्वास जगाओ।

जहाँ आत्म को परम शान्ति हो वह ही तीर कहाये,
करत राष्ट्र पर प्राण निछावर वही वीर हो जाये।

बिना त्याग जीवन है मिथ्या कहते संत मछन्दर,
त्याग बिना नहिं होवत मानव योगी कबहुँ सिकन्दर।

जीवन में जो कदम बढ़ाया वही लक्ष्य को पाया,
जिसने हिय महँ त्याग जगाया विजयी वही कहाया।

विषय इन्द्रियों का सुख इक दिन दुख में परिणित होगा,
आज नहीं तो कल छायेगा अंधकार भय रोगा।

मानव वह जो सत्य राह चल नव पथ निर्मित करता,
पर कुपंथ पर चलने वाला मनु प्यासा ही मरता।

मारि मारि आत्मा को निश दिन तुम जीवन जीते हो,
पर उसकी पीड़ा को क्यों तुम अनुभव नहिं करते हो।

हर बालक अनजान संत सम मत कर नफरत भाई,
उसका हिय अति उज्ज्वल निर्मल सत्य समझ कब आई।

बन्दे! याद रखो तुम इतना मिले न पुनि माँ बाबा,
कर ले सेवा जग में ये ही तेरे काशी काबा।

औरों का तू पाप देखते अपना देखो भाई,
अपनी करनी देख जगे जो महापुरुष हो जाई।

अपने प्रति मोहित मत होना जग में फँस जाओगे,
मोह रूप दलदल में फँसि के निकल नहीं पाओगे।

अलग अलग है नाम तोर पर हो मिट्टी के भाँड़े,
गड़ता कोई जलता पर नहिं माटी आवत आड़े।

जबहि ज्ञान होवत अज्ञान कै जान ज्ञान पथ सोई,
जो मानत अपने को ज्ञानी अज्ञानी वह होई।

जाग कहाँ तू पाये मानव वरना क्यों मुरझाते,
हर कण में तू देख ईश छवि खिल न फूल सम जाते।

जहाँ नहीं ज्ञानी धनवानी वैध नदी अरु राजा,
तहाँ ठहर नहिं मानव क्षणभर पूरण होइ न काजा।

पढ़त वेद जो धन वावत सो खात पाप कै दाना,
होवत सो वासुकि सम विषधर अधम अधायु अजाना।

कूद पड़े भव सागर में प्रिय गहराई बिन जाने,
ले नौका पतवार पुरानी पार किनारा पाने।

मूरख शिष्य पतित नारी नर पर धन सँग संयोगा,
होवत पाप ताप भयकारी कहइँ संत मुनि जोगा।

जा गृह सर्प वचन कटु नौकर दुष्ट नारि सुत कपटी,
मृत समान होवत गृह स्वामी रात दिवस विष लिपटी।

पर यश लखि कूढ़त मन ही मन नीच अधम सो होई,
निन्दा करत न थकत जोइ नर नरक जाइ सो रोई।

वचन कठोर अनीति सोच मन अमर्यादित करमा,
नीच मनुज कै संगति होवत पशुवत पतित अधरमा।

दाता दुस्मन कर्जदार अरु कुलटा पत्नि दुखारी,
मूरख पुत्र मित्र अरु भाई जानहु जनम बिगारी।

पतिव्रता पत्नी सुपुत्र मित सत संगति हो भाई,
ता से बड़ा न सुख जग कोई धर तू हृदय लगाई।

जो धन हेतु सुसह दुख भोगत तजत धर्म पथ यारी,
शीष झुकत शत्रुन समक्ष सो धन होवत भयकारी।

तन धन मान पाइ को नर कह जग महँ नहिं बौराया,
को सतसंग पाइ नहिं सुधरल दुष्ट संग दुख पाया।

ईश भजन से मन बुधि निर्मल होवत हृदय उदारा,
श्रेष्ठ विचार बुद्धि महँ उपजत कर्म होत संस्कारा।

सज्जन लखि दूसर कै सुख क्षण होवत प्रमुदित भाई,
पर खल नित विह्वल होवत लखि जब पर सिर दुख छाई।

काँटो से तुम दूरहि रहना वरना क्षन धँस जाई,
आततायि कै संगति होवत सदा मनुज दुखदाई।

अस्त्र शस्त्र आधुनिक सुसज्जित सेना सोई महाना,
उत्तम देश वही जाकर हो शैन्य शक्ति बलवाना।

नियत शास्त्र लखि समय कर्म कर जीवन सफल कहाई,
अवसर खोवत रोवत सोई जनम नरक बन जाई।

कितने दिन की तोर जिन्दगी मत इतरा तू भाई,
ईश शरण तू आ जा वरना व्यर्थ जनम हो जाई।

परिग्रह से नहिं बड़ा पाप जग मूढ़ जान नहिं पाया,
जीवन भर करि करि संग्रह मनु व्यर्थहि जनम गवाया।

मार सके ना कोई उसको जो नव राह बनाते,
जो औरों के खातिर प्यारे जीते अरु मर जाते।

ज्ञान छिपाना कबहूँ नाहीं जन जन तक पहुँचाना,
शायद दीपक बने किसी का डगर डगर नित गाना।

जा मन पाप कुटिलता तनिकहु होत न पावन सोई,
कर ले भले यज्ञ व्रत तीरथ हिय महँ ज्योति न होई।

देख भिखारी द्रवित नाहिं हिय क्रूर अपावन सोई,
दंभ मान मद तन धन ताकर नाश एक दिन होई।

करत मनुज प्रति द्वन्द द्वेष जो होत स्वयं कै नाशी,
तन धन वाणी व्यर्थ कहावत ता ऊपर जग हाँसी।

नित सतर्क तुम रहो अग्नि पशु पानी मूरख नागा,
नृप स्त्री इनकर समीपता होत अकारण दागा।

सतसंगति सँग ईश्वर होवत फूल संग नित गंधा,
नीचन संग नीचता साजे करहु देख सुनि धंधा।

दुष्ट संग व्यवहार दुष्टता और राह नहिं कोई,
संतन सँग सतसंगति भाई करो समय बिन खोई।

बुद्धिमान नर होत वही जो सत असत्य पहचाने,
कर्म अकर्म मोक्ष बन्धन कै लाभ हानि सब जाने।

कर पितु को हर्षित सुकर्म से सतसंगति से माता,
देहु ज्ञान से सद्गुरु को सुख मोह नारि को भाता।

जा दृग में हो नींद स्वान सम ध्यान बगुल सम भाई,
सिंह सदृश हो शूरवीरता सो फौजी कहलाई।

कुक्कुट जागि ब्रह्मबेला में रोज उठावत तोहीं,
उठे ना उठे पर नित मुर्गा बाग देत निर्मोही।

अर्थ काम दोनहु जीवन के होते लक्ष्य हमारे,
पर सीमा से पार जात जो पहुँचत नरक दुआरे।

जग में छोटा वह जो नाहीं कदम बढ़ाता भाई,
कदम बढ़ाने वाला निर्मित करता नव पथ गाई।

नीच नहीं कोई प्राणी जग सब हिय ईश्वर वासी,
वही सुभाषित करता निशदिन पर नित रहत उदासी।

धन दौलत लक्ष्मी होती है माँ सम इज्जत करना,
इसे नीति पूर्वक लेना तू और नीति सँग देना।

प्रभु रहता तेरे सँग निश दिन जरा आँख तो खोलो,
चारो तरफ विभूति ईश की दीख रही मत भूलो।

चले ना चले कोई सँग पर चलते ही तुम रहना,
वीच राह में मिल जाये जो साथ लिए तुम बढ़ना।

विषयेन्द्रिय महँ मीन पतंगा अरु भौरा मृग हाथी,
फँसि फँसि जान देत तू देखत क्यों चेतत नहिं साथी।

बगुला सम तुम ध्यान लगाओ स्वान समान सजगता,
सिंह समान शक्ति संकट क्षन छुई मुई सम नमता।

धर्म राह तजि जो चलता वह मानव मृतक समाना,
धर्म विहीन मनुज तो नाहीं पशु होवइ को जाना।

जाकर कर्म सुसम्यक नाहीं ताको सुख नहिं चैना,
परमारथ की सोचत नाहीं स्वार्थ माहिं दिन रैना।

जागो नित्य ब्रह्मबेला में दिन सुखकर बीतेगा,
आयु वृद्धि तन स्वस्थ राह पर आगे पाँव बढ़ेगा।

सही राह पर कदम बढ़ा तो लक्ष्य अवश्य मिलेगा,
भले अनगिनत बाधा आये पग पीछे न हटेगा।

जग बन्धन जानत पर मानव निश दिन बँधि मरता है,
कूप त्यागि मेढक को बाहर कह कब प्रिय लगता है।

बीते दिन पर शोक न करना लौट नहीं आयेगा,
आगे की सुधि ले प्यारे तू वरना पछतायेगा।

कुलटा नारि सदा घर फोड़न होत न कबहुं सहारा,
करती नाश उफनती नदियाँ लेकर अंक किनारा।

घर गवाइ बाहर जो धाये सो पागल कहलाये,
बाहर का कह कवन भरोसा अपना भी चलि जाये।

क्रोध प्रगट तो दाँत तले क्षन जीह्वा को रख लेना,
प्रेम प्रगट हो तो हर प्राणी के हिय में भर देना।

ये बहरे गूँगे अंधे जो जीवन निरस बिताते,
ईश अंश सब तेरे अपने क्यों नहिं गले लगाते।

बिगड़त काम देखि दूसर पर दोष मढ़त क्षन माहीं,
बनत काम तब आत्म प्रसंशा महँ मनु पिछड़त नाहीं।

अस्त्र शस्त्र विन युद्ध भला नहिं व्यय नहिं बिना विचारे,
बिन सतसंग ज्ञान नहिं होवत कौन बिना गुरु तारे।

मिलत त्याग से आत्म शक्ति मन वीरों से कुर्बानी,
बालक से मृदु सरल स्वभावा बूढ़ो से गुरु वानी।

बाँधत तोहिं नित्य ममता में लोभ राग अरु द्वेषा,
काम करत अंधा नित तोहीं छावत द्वन्द विशेषा।

होवत सहज स्वभाव भगत कै उदासीन नित जोगी,
कर्मयोगि निर्द्वन्द व निश्छल स्थिर सदा वियोगी।

जहँ अभिमान ईश तहँ नाहीं द्वन्द द्वेष तहँ छाये,
जहाँ दंभ तहं प्रेम न करुणा दया धरम नहिं भाये।

अपने को अज्ञानी माने वह ही होवत ज्ञानी,
स्वाभिमान में चूर रहत सो खल अधायु अज्ञानी।

आज सभी सबको छलते तू बच के रहना भाई,
ना जाने कोई अपना ही तुमको कब छल जाई।

हर क्षण हर पल हर दिन ईश्वर रहत तुम्हारे पासा,
देख न पाये मुरख जागो तजि सब मोह पियासा।

वैरी मित्र भले हो जाये पर मन गाँठ न जाये,
ना जाने कब वैर प्रगट हो तुरतहि खड्ग चलाये।

प्रगति राह पर चलने वाला ही मानव कहलाता,
बीच राह में रुकने वाला ही कायर हो जाता।

जाहि कर्म महँ भय लागे सो कर्म अनीति कहाये,
भय का मूल अनीति कर्म जो जग बन्धन बन जाये।

मानव मानवता के पथ पर बढ़ते ही तू रहना,
प्रगति संग जीने वाला तू पीछे पाँव न धरना।

तप्त धूप अरु शर्दी में जो निज पथ पर चलते हैं,
खून पसीना में ही वे नव पथ निर्मित करते हैं।

होड़ लगी है भौतिकता की कहाँ तलक जायेगी,
गिरी जा रही नैतिकता कब सत्य समझ आयेगी।

बहुत हो गया अब तो जागो अन्त घड़ी अब आई,
तेरा जग ताना बाना सब छूट यही रह जाई।

मै तो कवि हूँ तुम्हें जगाना है कर्तव्य हमारा,
जागो ना जागो हे मानव है अधिकार तुम्हारा।

दोहा- जो जागा दीखा उसे सत्य असत्य प्रकाश,
कार्याकार्य भयाभय बन्धन मोक्ष उजास।



कवि चन्दरदास

कवि परिचय

संत कवि श्री चन्द्रशेखर उपाध्याय शास्त्री उर्फ चन्दरदास जी का जन्म ग्राम- अजाँव, पोस्ट- बर्थराखुर्द (चौबेपुर), जिला- वाराणसी उ०प्र० में दिनांक- 25 जुलाई 1948 को एक मध्यम ब्राह्मण परिवार में हुआ है। आपके पिताश्री का नाम स्वर्गीय उमाशंकर -उपाध्याय और माताश्री का नाम स्वर्गीय श्रीमती राजमती देवी है। आपने काशी विद्यापीठ से शास्त्री की उपाधि प्राप्त कर वहीं से सन् 1971 में एम०ए० (हिन्दी) की उपाधि प्राप्त की। आपके हृदय में काव्य के प्रति बचपन से ही विशेष प्रेम था। जिसके फलस्वरूप आपकी कई कविताएं एवं लेख समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। सन् 1977 में आपने "कल और आज" उपन्यास की रचना की। तब से आज तक आप निरन्तर साहित्य की सेवा करते आ रहे हैं। जिसमें "प्रियदर्शिनी-इन्दिरा गाँधी" (काव्य), वसुधैव कुटुम्बकम् (महाकाव्य), आत्मोद्गार (एक चिंतन), पदावली- (भक्तिपद), महर्षि भगवान वाल्मीकि (महाकाव्य), शान्तिपथ (चिंतन) एवं "चन्दरदास की सूक्तियाँ" (काव्य) नामक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

"चन्दरदास की सूक्तियाँ" नामक पुस्तक जो आपके हाथ में है, इसमें आध्यात्मिकता एवं भौतिकता दोनों को ही मानवता के उत्थान में आवश्यक बताया गया है। इसमें सत्य का उद्घाटन करते हुए नैतिकता पर विशेष जोर दिया गया है। इस पुस्तक में विचारों एवं वाणी सम्बन्धी प्रदूषणों की शुद्धि के लिए आत्मा, परमात्मा एवं जगत के सत्य स्वरूप को प्रधानता से उद्धृत किया गया है।

वर्तमान में कवि श्री चन्दरदास काशी नगरी के तिलमापुर गाँव में, जो कि आशापुर के पास स्थित है, निवास कर रहे हैं। सद्साहित्य एवं सद्ज्ञान का प्रचार-प्रसार करना ही आपके जीवन का मूल उद्देश्य है। जिसके लिए सन्तकवि श्री चन्दरदास सतत् प्रयत्नशील हैं।

प्रकाशक- पवित्रा प्रकाशन- 'पवित्रावास' के.६६/१-डी-१, नरहरपुरा, नाटी-इमली, वाराणसी - २२१००१ ● मो0- 9889555454